

इसमें संग्रहित कहानियों के बारे में –

पिछले पचास वर्षो में लिखी गयी 10 यादगार कहाँनियों में एन.आर. श्याम की कहानी 'पत्र-मित्र' दूसरे स्थान पर।

हंस (अग.सित.1997) में प्रतिष्ठित
कहानीकार संजीव

........'पत्र-मित्र', 'हिरणी', 'महादानव', 'अक्वैरियम में बन्द गहरे समुंदर की रंगीन मछलियाँ' और 'साबुन' जैसी यादगार कहानियाँ देकर एन. आर. श्याम ने अपने लेखन के प्रति यदि आश्वस्त होने के लिए विवश किया है, तो आज के जटिल और चुनौतीपूर्ण समय में इसे एक उपलब्धि के रूप में रेखांकित किया जाना चाहिए।.....

मदन मोहन, संपादक 'नयी रचना'
गोरखपुर.

हि र णी
कहानी संग्रह
एन. आर. श्याम

हि र णी

कहानी संग्रह



एन. आर. श्याम

www.eTelangana.org

हिरणी

एन.आर. श्याम

परमेश्वरी पब्लिकेशन, मंचेरियाल.

www.eTelangana.org

प्रकाशक :

परमेश्वरी पब्लिकेशन्स

डी/4/ए.,
ए.सी.सी. मंचेरियल - 504 209,
जिला : आदिलाबाद. (आं.प्र.)
✆ 09849717025.

© एन.आर. श्याम

प्रथम संस्करण : 2006

मूल्य : 101/-

लेजर टाइप सेटिंग :
अभिषेक
एस्के एण्टरप्राइजेस
आर.पी. रोड, मंचेरियल - 504 208.

मुद्रक :
सत्यवती प्रिंटिंग प्रेस
मेन रोड, मंचेरियल - 504 208.

आवरण :
कुटुम्बराव

अंदर के सभी चित्र - हंस, वर्तमान साहित्य, समरलोक, प्रेरणा, गोलकोण्डा दर्पण से साभार

Hirani

Storiesby

N.R.Shyam

दिवंगत माँ लक्ष्मीबाई को...

www.eTelangana.org

क्रम

www.eTelangana.org

दर्द से पैदा हुई दर्द के विरुद्ध आक्रमक कहानियाँ...

अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में श्याम से बस्ती (पूर्वी उ.प्र. का एक जनपद - कस्बानुमा शहर) में मुलाकात हुई थी - उनकी कहानी 'पत्र-मित्र' के साथ। तब शिवमूर्तिजी बिक्रीकर अधिकारी थे। शिवमूर्तिजी के सौजन्य से बस्ती के अध्यापक-बुद्धिजीवी और साहित्य-संस्कृति की पत्रिका 'दूर्वादल' के संपादक परमात्मा प्रसाद द्विवेदीजी ने हम मित्रों को आमंत्रित कर एक कथा-गोष्ठी करायी थी, जिसमें श्याम की कहानी पत्र-मित्र का पाठ उनकी जुबानी संभव हुआ था। साहित्य में उन दिनों प्रगतिशीलता के अलावा जनवाद और नवजनवाद का शोर-शराबा कुछ ज्यादा ही था। हमारी पक्षधरता नवजनवाद के प्रति थी, क्योंकि नवजनवाद नक्सल विचारधारा का एक राजनीतिक प्रत्यय बन कर उभरा था।

साहित्य-संस्कृति के क्षेत्र में यह कितना सार्थक और ऊर्जावान सिद्ध हुआ, यह अलग बहस का बिंदु है, किन्तु इसने उस समय की युवा पीढ़ी के लेखन में सीधा हस्तक्षेप किया था। कहानी, कविता में राजनीतिक विचारधारा का आग्रह सतह पर आ गया। कहानी के संदर्भ में उस समय के युवा लेखन को, हालांकि प्रेमचंद की परम्परा के विस्तार के रूप में देखा जा रहा था, किन्तु राजनीतिक लक्ष्यों को साहित्य से प्राप्त करने की एक 'अतिउत्साही' प्रवृति का भी आरोप लगा। कहा गया कि विचारधारात्मक आग्रह वाली कहानियों में लेखक अपने विचारों को, घटनाओं और चरित्रों

www.eTelangana.org

के स्वाभाविक विकास को कुंठित करके उनपर अपने आग्रहों को लाद रहा है। ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि वास्तविक जन-जीवन से उसका (लेखक) निकट का परिचय नहीं है, और वह कल्पना के सहारे ही पात्र और घटनाएँ गढ़ रहा है, और सर्वशक्तिमान की तरह, जहां जो कुछ करना चाहता है, कर दे रहा है।

उपरोक्त कथन पूर्णतः सत्य न रहा हो, पर जनता को क्रांतिकारी चेतना से लैस करने के कार्य को, यानी शुद्ध राजनीतिक उद्देश्य को, साहित्य से पूरा करने की कोशिश स्पष्ट देखाई दे रही थी। लेखन में, संवेदना की सघनता और भाषा-सौंदर्य का अभाव-बहुत्तर पाठक समुदाय बनाने में असमर्थ रहा था। कहना न होगा कि इस प्रवृत्ति ने उस दौर की सर्जनात्मकता को काफी क्षति पहुंचायी। सर्जनात्मकता, जिसमें लेखक का सामाजिक वैचारिक सरोकार भी रचा-बसा होता है - फूल में खुश्बू की तरह।

फिर भी उस 'अति' से कुछ रचनाकारों ने खुद को बचाया, और अपना अलग मुहावरा गढ़ा।

ऐसी रचनाशीलता की तलाश जब हम एन.आर. श्याम की कहानियों में करते हैं तो हमें किंचित निराशा के साथ सुखद और विलक्षण अनुभव भी होते हैं। 'विलक्षण अनुभव' की बात मैं इसलिए कर रहा हूँ कि नक्सल विचारचेतना से अभिप्रेरित श्रीकाकुलम और तेलंगाना के सधन क्रांतिकारी आंदोलनों के बीच रहकर श्याम ने क्रांतिधर्मी कथावस्तु के साथ भाषा और शिल्प-सौन्दर्य धर्मिता का दामन भी थामें रखा है। मिसाल है उनकी 'पत्र-मित्र', 'हिरणी', 'महादनव', 'साबुन', 'डुक्कर', 'पोस्चर से हटकर' और 'एक्वेरियम में बन्द गहरे समुन्दर की रंगीन मछलियाँ' जैसी कहाँनियाँ।

संग्रह की पाण्डुलिपि प्राप्त होने से पूर्व मेरी स्मृति श्याम की 'पत्र-मित्र' और 'पोस्चर से हट कर' मात्र दो कहानियां ही रही हैं-अपने खासे प्रभाव के साथ। श्याम के संदर्भ में एक खास बात और उल्लेखनीय है कि (उन्होने स्वयं की रचनात्मक-यात्रा के बारे में बहुत ही खूबसूरत टिप्पणी की है -कृपया देखें 'लेखक की ओर से')। वे तेलुगु भाषी होकर भी तेलुगु भाषा नहीं जान पाये। कारण जीवन-यापन के लिए माँ-बाप का अपने मूल प्रवास से टूटना और जुड़ना था। इस आपाधापी (तेलंगाना से बिलासपुर - बिलासपुर से फिर तेलंगाना) में शिशु से बालक हो रहे श्याम को अपनी मूल भाषा में बोलने-लिखने का अभ्यास न हो सका। और उन्हें विवश होकर (किन्तु उचित) हिन्दी की शरण में जाना पड़ा। जीवन के सांस्कृतिक पक्ष की यह एक ऐसी विडम्बना थी जिससे दो-चार होना एक अलग तरह का ही अनुभव और संघर्ष था। इसलिए श्याम ने जब किंचित संकोच के साथ अपने प्रकाश्य कथा संग्रह 'हिरणी' पर कुछ लिखने का आग्रह किया तो मैने सहज ही हाँ कर दी, इस लोभ में कि देखें उस लेखक ने सघन क्रातिकारी आंदोलनों के बीच रहकर कैसे अपने लेखन को राजनीतिक विचारधारात्मक अति से बचा कर रखा है?

प्रकाश्य संग्रह में एन. आर. श्याम की कुल तेरह कहाँनियाँ सम्मिलित की गई हैं। ये कहानियाँ सन् 1980 से 2003 के बीच लिखी गई हैं और सभी कहानियाँ हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं।

जैसा कि ऊपर संकेतिक है कि अधिकांश कहानियों में कथ्य की लक्ष्यात्मक्ता और शिल्प के इकहरेपन की शिकायत की जा सकती है, जैसा कि सातवें-आठ्वें दशक की विचारधारात्मक

www.eTelangana.org

आग्रहों वाली कहानियों के साथ घटित हुआ था। मगर, यह सुखद है कि श्याम की लक्ष्यात्मक और इकहरी कहानियों में हू-ब-हू वही 'अति' नहीं है। श्याम के यहाँ अजनबी-काल्पनिक पात्र नहीं है, बावजूद इसके कि उनके अधिकांश कहानियों में नक्सल विचार चेतना का बखूबी समावेश है। और क्यों न हो जब श्याम के आस-पास का जन-जीवन सामंती, पूंजीवादी और साम्राज्यवादी शोषण उत्पीड़न से मुक्ति के लिए संघर्षरत हो। साम्राज्यवाद भूमंडलीकरण, बाजारवाद और साम्प्रदायिक फासीवाद के नवीनतम रंग-रूपों में अपने केचुल बदल रहा हो, और जिसके लपेटे से देश का निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग के साथ किसान-मजदूर भी ना बच पा रहा हो। क्या यही समय नहीं है कि हम सामंती-साम्राज्यवादी साहित्य-संस्कृति के विरुद्ध खुल कर अपने सर्जनात्मक हथियारों का इस्तेमाल करें? अगर यह आवश्यक है, तो श्याम की कहानियों में नक्सल-चेतना का समावेश समीचीन भी है।.....

'लेखक की ओर से' अपनी टिप्पणी में श्याम ने अपने लेखन की एक और गंभीर विडम्बना की ओर ध्यान खींचा है। वह यह है कि हिन्दी में लिखने के नाते उनके पाठक हिन्दी प्रदेश के ही हो सकते थे। पर तेलुगु और हिन्दी की संस्कृति, जन-जीवन और समस्यों में अंतर होने के कारण जिस जन-जीवन को उन्हें चित्रित करना था, वे उनके पाठक नहीं थे। और जिन पाठकों तक उन्हें अपनी रचना पहुँचानी थी, यह उनकी समस्या नहीं थी, इसलिए उन्हें अपनी कहानियों उभयनिष्ठता (जनरालिटी) का सहारा लेना पड़ा।

श्याम ने इसे और स्पष्ट करते हुए कहा है कि दोनों संस्कृतियों, जीवन स्थितियों और समस्याओं में अंतर होने के बावजूद

एक चीज जो उन्हें परस्पर जोड़ती है- वह है 'दर्द'। दुनियाँ में कोने-कोने के लोग इस दर्द के द्वारा ही आपस में जुड़े हैं।

श्याम को अपनी कहानियों के संदर्भ में यह स्पष्टीकरण जरूरी क्यों लगा? क्योंकि उन्होंने अपनी कहानियों में धड़ल्ले से तेलुगु परिवेश, बोली-बानी, पात्रों-चरित्रों के नाम, पोशाक-पहनावा आदि का प्रयोग किया है। स्थानीयता का यह बेधड़क इस्तेमाल श्याम की कहानियों के समग्र प्रभाव को हिन्दी क्षेत्रों में भी विश्वसनीय और सहज स्वीकार्य बनाता है।.... 'पोस्चर से हटकर', 'हिरणी', 'महादानव' और 'साबुन' में यद्यपि कतिपय अतिरंजित घटनाएँ और कुछ फंतासियाँ देखी जा सकती हैं, मगर कहानी में इनकी सार्थकता से इन्कार करना कठिन है। जैसे 'कफन', 'सद्गति', और 'पूस की रात' की अतिरंजना और फंतासी।

कुछ कहानियों में शिल्प गढ़ने की सायासता खटकती है। जैसे 'यह मेरा शहर नहीं है', 'एड्जस्टमैन्ट' और 'कोकिला उर्फ नई सुबह'।

उक्त के अतिरिक्त श्याम को अनावश्यक अंग्रेजी शब्दों के इस्तेमाल से भी बचना चाहिए था।..... और उन ठेठ तेलुगु शब्दों से भी जिनके अर्थ खुलने से भी रह जाते हैं। ऐसे शब्दों को भी हिन्दी की आम बोल-चाल की भाषा में रूपांतरित कर दिया गया होता, तो ज्यादा बेहतर होता।

'काकतीय एक्सप्रेस' सीरीज की कहानियों की श्याम की योजना क्या कोई औपन्यासिक स्वरूप नहीं ग्रहण कर सकती थी? तब जिस दुहराव की विवशता श्याम को परेशान कर रही है, वह किसी उपन्यास के ढांचे में खप कर निश्चित ही कोई बड़ा और सार्थक फलक अख्तियार कर लेती.....

www.eTelangana.org

विषय की एकरूपता, दुहराव, मुखरवैचारिक आग्रह और शिल्प की सायासता जैसी यत्किंचित खामियों के बावजूद श्याम ने 'पत्र-मित्र', 'हिरणी', 'महादानव', 'अक्वैरियम में बन्द गहरे समुंदर की रंगीन मछलियाँ' और 'साबुन' जैसी यादगार कहानियाँ देकर अपने लेखन के प्रति यदि आश्वस्त होने के लिए विवश किया है, तो आज के जटिल और चुनौतीपूर्ण समय में इसे एक उपलब्धि के रूप में रेखांकित किया जाना चाहिए।.....

मदन मोहन
दिनांक : 28-01-2006 15 एम.आई.जी.
राप्तीनगर, फेस-3,
पत्रकार पुरम, गोरखपुर, (उ.प्र.)

-: लेखक की ओर से :-

जब मैं आठवीं कक्षा में पढ़ रहा था तब मैने एक कविता लिखी थी। कविता का शीर्षक था – 'वीरों का कर्तव्य'। 1962 के चीन और 1965 के पाकिस्तान के साथ हुए युद्ध ने मेरे कोमल मन को बुरी तरह झकझोर दिया था। उसी का परिणाम यह [illegible] रस प्रेरित कविता थी। यह कविता मैने स्कूल से निकलने वाली स्मारिका के लिये लिखी थी। साहित्य में कुछ रुचि रखने वाले हमारे हिंदी के एक अध्यापक सत्यनारायणजी ने इसे काँट-छाँट कर एक आकार दिया था। बाद में न तो स्मारिका निकली और न ही यह कविता ही प्रकाशित हुई। यह मेरी पहली रचना थी। ..... तब से आरंभ होने वाला मेरा लेखन कितने ही तरह के धक्के-मुक्के खाते हुए, कितने ही उतार-चढ़ाव को पार करते हुए आज भी जारी है बीच-बीच में लम्बा अंतराल ही सही।.....

रचनायें लिखना एक बात है और उनका प्रकाशन दूसरी बात। रचना कर्म के लिये जितना तकलीफ झेलना पड़ता है, जितने मानसिक तनाव से गुजरना पड़ता है उससे कहीं ज्यादा संघर्ष उसके प्रकाशन के लिए करना पड़ता है। रचना कर्म तो लेखक के हाथ में होता है पर उसका प्रकाशन किन्हीं औरों के हाथों में। प्रकाशन का यह संघर्ष तो मेरे जैसे उस हिंदी लेखक के लिए तो कहीं और ज्यादा होता है जो किसी सुदूर अहिंदी भाषी प्रदेश में रह रहा हो, साहित्यिक गुटबाजियों से अलग या उचित होगा यह कहें कि इन गुटबाजियों से अनभिज्ञ भी। पर यह संघर्ष जारी रहा। कठोर संघर्ष के बावजूद ही सही मेरी कहानियाँ हिन्दी की प्रतिष्ठित पत्र-

www.eTelangana.org

पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं और कुछ अखिल भारतीय स्तर पर पुरस्कृत भी।

पर इतने वर्षो के लेखन के बावजूद इतना सब कुछ लिखने के बावजूद अभी तक मेरा कोई संग्रह नहीं निकल पाया है। इसका एक कारण यह भी है कि लेखन के वक्त जो दबाव और बेचैनी होती है, प्रकाशन के मामले को लेकर उतने दबाव और बेचैनी का न होना।.... संग्रह के रूप में यह मेरी पहली पुस्तक है।

संकलन निकलने की तैयारी करते वक्त मेरे जहन में बार-बार प्रश्न उठने लगा कि -

'आखिर मैं क्यों लिख रहा हूँ?'

'इतना सब लिखकर मैने क्या पाया है?'

'इसके द्वारा मैने लोगों को क्या दिया है?'

'क्या कारण है क़ि इसके पीछे मैने अपने कैरियर की भी बलि दे दी?'.....

और इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिये मैं पीछे मुड़कर अपने अतीत में देखता हूँ।

-वहाँ दस-ग्यारह साल का गुमसुम सा एक लड़का, अपनी जमीन से उखाड़कर किसी सख्त जमीन पर रोपे जाने वाले पौधे की तरह मुरझाया हुआ। हाँ उससे उसकी जमीन छीन ली गयी थी। गाँव छीन लिया गया था। घर छीन लिया गया था। उससे उसके मित्रों को छीन लिया गया था।

.....उसने छत्तीसगढ़ के बिलासपुर के एक छोटे से मोहल्ले में आँख खोला था। इसे ही उसने अपनी मातृ भूमि मान लिया था। वहाँ की मिट्टी की महक उसके कण-कण में बसी हुई थी। फत्ते, खोरवा, कमलू, भाऊ, हसमत, समता, गुड्डी, जुलेखा, सकीना,

छोटी, मुन्नी, बड़ी मुन्नी सब उसके संगी-साथी थे। दादू के पूरण दादा उसके दादा थे और हसमत के नाना नाबी उसके अपने नाना-नानी। फत्ते का बाप उसका मामा था और दाई उसकी अपनी दाई। ......और उसके खुद की अव्वा(माँ) सारे मोहल्ले की अव्वा थी। छोटे से लेकर बड़े बुजुर्ग तक सब उसे अव्वा कहकर ही पुकारते थे। सारा मोहल्ला उसका अपना परिवार था। इसे ही उसने अपना ओरिजिन (मूल) मान लिया था। हाँ उसे अपने ओरिजिन से उखाड़ दिया गया था।

वह तेलंगाना ओरिजिन का था। पाँचवे दशक के पूर्वार्ध में उसके माँ-बाँप रोजगार की तलाश में कूलीगीरी-मजदूरी करते हुए, तेज धूप में सड़क पर गिट्टी बिछाते हुए, गरम-गरम डांबर सर पर ढोते हुए, घाट-घाट का पानी पीते हुए बिलासपुर पहुँचे थे और वहीं बस गये थे। यह उनका प्रवास था।

जब वह छः सात साल का और छोटी बहन का दूध भी न छूटा था कि जेचकी के दौरान मर जाने वाली अपनी बड़ी बेटी की याद में तड़पता हुआ उसका बाप भी चल बसा था। परिस्थितियों ने फिर से उन्हें अपने मूल में ला छोड़ा था। अपने मूल में आकर भी यह उसके लिए प्रवास था।....

मूल में आकर भी वह मूल से नहीं जुड़ सका था। यहाँ कि भाषा उसके लिये अपरिचित थी। यहाँ के लोग उसके लिये अपरिचित थे। यहाँ की संस्कृति उसके लिये अपरिचित थी। तेलुगु मातृभाषा होकर भी तेलुगु न आने के कारण लोग उसकी खिल्ली उड़ाते थे। संबंधी-रिश्तेदार उसे जू के प्राणी की तरह देखते थे। ......और वह हीनता का शिकार होता चला गया था।.......मोहल्ले के सब बच्चे खेलते रहते और वह और उसकी छोटी बहन बस उन्हें टुकर-टुकर देखते रहते थे।

www.eTelangana.org

उसे याद आता था उसका अपना जिगरी दोस्त फत्ते जिससे उसकी कट्टी हो गयी था और बिछुड़ते वक्त भी उसके पहल करने के बावजूद भी उसने बात न की थी बालसुलभ जिद में आकर। तब वह बिछुड़ने का मतलब नहीं समझता था। और अब समझ रहा था बिछडने के बाद बिछुड़ने के दर्द को। उसे याद आता है सच्ची लाल भैय्या जिसने उसे मारने वाली खोरवा की माँ पर बायें हाथ का ऐसा झापड़ रसीद किया था कि वह गश खाकर नीचे गिर पड़ी थी। उसे याद आ रहा था काछी बाई का ममतामयी वह चेहरा जिसके खेत में वह और जुलेखा सुबह-सुबह ही दूध लेने जाते और वह बकरी का दूध उनके सामने ही दुहकर जुलेखा के गिलास में कम और न जाने क्यों उसके गिलास में ज्यादा डालकर देती थी। उसे याद आ रही थी गौसाला की चौदह नम्बर वाली सफेद गाय जो उन्हें देखते ही उनके पास आकर खड़ी हो जाती और वे प्यार से अपने हाथों से उसका गर्दन सहलाते।

सौभाग्य से इस तेलुगु भाषी प्रान्त में भी मारवाड़ियों द्वारा चलाये जाने वाला हिन्दी माध्यम स्कूल उसे मिल गया। यहाँ पर ज्यादातर विद्यार्थी मारवाड़ी ही थे। ....उनसे अच्छी दोस्ती थी परन्तु अलग संस्कृति, अलग संस्कार के कारण उनके साथ भी उतनी अंतरंगता कायम न हो पायी। वह एक तरफ स्कूल के उस परिवेश से अपने को कटा महसूस करता तो दूसरी तरफ स्कूल के बाद मोहल्ले के तेलुगु भाषी बच्चों के बीच भी अजनबी सा ही रहता।

इस सबने उसे अंतरमुखी बना दिया था। न कोई संगी, न कोई साथी। उसके पास समय ही समय। ....और इस समय को

काटने के लिए अध्ययन। लीजरपन के कारण यह अध्ययन भी इतना धीमा कि यह धीमापन जिंदगी का एक हिस्सा बन गया। पढ़ाई भी धीमा और लेखन भी धीमा।.....

लोगों को अपनी मातृभाषा तेलुगु में धारा प्रवाह बात करते देख उसे लगता कि काश वह भी उनकी तरह ही बातें कर पाता। दूसरे लड़कों की तरह उसके भी अपने दोस्त हों, जिनसे वह भी उनकी तरह ही हंस-खेलकर बातें कर पाता, मौज मस्ती कर पाता। ....

आप तो समझ ही चुके होंगे कि 'वह' और कोई नहीं बल्कि 'मैं' ही हूँ जिसके पास अभिव्यक्ति के सारे माध्यम बंद थे। और जब विश्लेषण (अनालिसिस) करता हूँ तो पाता हूँ कि मेरा यह लेखन और कुछ नहीं बल्कि अभिव्यक्ति का माध्यम ही है। अपने-आपको व्यक्त करने का माध्यम।.......

समाज शास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य के आरंभिक वर्षों की परिस्थितियाँ उसके मस्तिष्क पटल पर गहरी छाप छोड़ती हैं। वह उसके व्यक्तित्व के निर्माण में प्रमुख भूमिका निभाती है। भावी जीवन का दिशा-निर्देश भी इसी पर आधारित होता है। यह छाप इतनी गहरी होती है कि जिंदगी भर इसे भूल पाना मुश्किल है। और दूसरी बात यह है कि हर व्यक्ति दो तरह का जीवन जीता है। एक है व्यक्तिगत जीवन और दूसरा सामाजिक जीवन। पर यह व्यक्तिगत जीवन लगातार सामाजिक जीवन से प्रभावित होता रहता है। अपने आस-पास, अपने परिवेश में जो भी घटित होता है उससे वह प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता है। मैं तेलंगाना में पिछले चार दशक से रह रहा हूँ। तेलंगाना मेरी कर्म भूमि रही है।..... तीन, साढ़े तीन दसक पहले श्रीकाकुलम आंदोलन

www.eTelangana.org

से चिंगारी पकड़कर धधक पड़ने वाले तेलंगाना आंदोलन के दौर से गुजरा है मेरा जीवन। इस समाज ने लोगों का अंतर्नाद सुना है, हाहाकार सुना है, जनाक्रोश देखा है, नवयुवकों के खून से यहाँ के जंगल, धरती, नदी, नाले, पहाड खेतों को लाल रंग में रंगते देखा है। इसने पुराने मूल्यों को चरमाकर टूटते देखा है, नयों को स्थापित होते देखा है। तेलंगाना का कृषक आंदोलन हो या गिरिजन आंदोलन, कार्मिक आंदोलन हो या छात्र आंदोलन सभी ने इस समाज को बुरी तरह झकझोककर रख दिया है। इसके प्रभाव से बच सकना मुश्किल है।

कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। लेखक जिस परिवेश में रहता है वहाँ के जन-जीवन से प्रभावित होकर ही रचना करता है। इसलिए मेरी रचनाओं की विषय-वस्तु मुझे तेलंगाना के जन-जीवन से ही उठाना था। पर इसमें मेरे बचपन का वह जीवन जिसकी जड़ें बहुत गहरायी तक मेरे जेहन में विद्यमान थी, आड़े आती रहीं। दूसरी समस्या पाठक वर्ग को लेकर थी। लेखक की जिस भाषा पर पकड़ होती है वह उसी भाषा में रचना कार्य करता है। लाजिमी था कि मुझे हिंदी में लिखना था। पर हिंदी यहाँ के तेलंगाना वासियों की भाषा नहीं है। मेरे पाठक हिन्दी प्रदेश के ही हो सकते थे। पर यहाँ की संस्कृति में और वहाँ की संस्कृति में, यहाँ के जन-जीवन में और वहाँ के जन-जीवन में, यहाँ की समस्याओं में और वहाँ की समस्यों में बहुत अंतर है। जिस जन-जीवन को मुझे चित्रित करना था वे मेरे पाठक नहीं थे और जिन पाठकों तक मुझे इन्हें पहुँचाना था, यह उनकी समस्या नहीं थी। इसलिये मुझे अपनी कहानियों में जनरालिटी लानी पड़ी। पर अलग संस्कृति, अलग जन-जीवन, अलग समस्याओं के बावजूद एक चीज है जो लोगों को आपस में जोड़ती है वह है

'दर्द'। दुनियाँ के कोने-कोने के लोग इस दर्द के द्वारा ही तो आपस में जुड़े हुए हैं। अफ्रिकन साहित्य हो या लातीन अमेरिकन साहित्य, उसे पढ़ते समय उनके दर्द को ही तो यहाँ पर हम अपने सीने में महसूस करते हैं।

संतोष इस बात का है कि एक अलग-सलग छोटी सी धारा के रूप में आरंभ होने वाला मेरा जीवन बड़े प्रवाह में मिलकर चलने लगा है।

संप्रेषण की समस्या का एक उदाहरण देना चाहूँगा, इस संग्रह की टाइटिल कहानी 'हिरणी' का संदर्भ देते हुए। यह कहानी हंस के मई 1997 अंक में छपी थी। पर छपने के पहले ही मेरे एक मित्र तेलुगु के कहानीकार अल्लम राजय्या ने इसका अनुवाद तेलुगु में बिना किसी काँट-छाँट के हूबहू कर दिया और 'ऋतुपवनालु' नामक कहानी संग्रह में प्रकाशित हो गयी। कुछ तकनीकि कारणों से यह कहानी अनुवाद के रूप में न छपकर तेलुगु की मूल कहानी के रूप में ही छप गयी। कहानी को कुछ कलात्मक रूप देने के लिये इसमें कुछ जगह पर विषय को खुलकर न कहने के बजाय सांकेतिकता का सहारा लिया गया है। चूँकि इस कहानी का परिवेश तेलंगाना का आदिलाबाद जिला है, इसलिए तेलुगु पाठकों के लिये संप्रेषण की बिल्कुल समस्या नहीं रही। तेलुगु में यह कहानी काफी चर्चित रही। परन्तु हिन्दी में इस पर बहुत ही ज्यादा सांकेतिकता का आरोप लगा है।

इस बीच मैंने 'काकतीय एक्सप्रेस' सीरीज के अंतरगत 14-15 कहानियाँ लिखी हैं। लेखन का यह क्रम अभी भी जारी है। -काकतीय एक्सप्रेस तेलंगाना में वारंगल और हैदराबाद के बीच चलती है। कहानी का एक पात्र अपनी नौकरी के चलते

www.eTelangana.org

वारंगल से हैदराबाद रोज अॅप-डाउन करता रहता है। इस यात्रा में वह रोज नये-नये लोगों से मिलता है। रोज नये-नये अनुभवों से गुजरता है। और उसका यही अनुभव कहानी का रूप लेती है। इस संग्रह में इस सीरीज की तीन कहानियों का समावेश भी किया गया है। चूँकि कहानियों में परिवेश का दुहराव हुआ है इसलिए इसे स्पष्ट कर देना मैने उचित समझा।

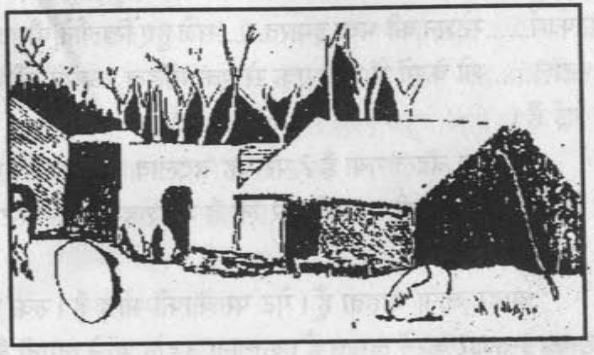
हिन्दी के प्रतिष्ठित कहानीकार संजीव, शिवमूर्ति, दक्षिण समाचार के संपादक मुनीन्द्रजी, तेलुगु कहानीकार अल्लम राजय्या, तुम्मेटी रघोत्तम रेड्डी और गोपीचन्द जैसे लोगों का लेखन में समय-समय पर मार्गदर्शन मिलता रहा है। अगर उनका सहयोग और सहकार नहीं मिलता तो शायद आज यह संग्रह नहीं निकलता। ....प्रतिष्ठित कथाकार, और 'नई रचना' के संपादक - 'मदन मोहनजी' ने सहृदयता से इसकी भूमिका लिखना स्वीकारा है। मैं इन सबका आभारी हूँ।

अब यह संग्रह आपके हाथ में है। अपनी प्रतिक्रियाओं से अवगत करा सकें तो मुझे खुशी होगी।

एन. आर. श्याम

डी/4/ए.,
ए.सी.सी. मंचेरियल - 504 209,
जिला : आदिलाबाद. (आं.प्र.)
✆ : 09849717025.

यह मेरा शहर नहीं है



प्लेटफार्म पर कदम रखते ही आंखें डबडबा आयी थीं। चारों तरफ चाय-चाय..... कॉफी, गरम कॉफी....... वड़ा, मसाला वड़ा..... शोर शराबा। ......लोग उतर रहें हैं, चढ़ रहे हैं। सबकी अपनी-अपनी हडबड़ी। यात्रियों का एक बड़ा-सा रेल एक्जिट की तरफ बढ़ रहा है।

पूरे बाईस साल बाद कदम रख रहा हूं अपने इस शहर में। इस शहर का चप्पा-चप्पा अपने जेहन में समाये रखा हूं ज्यों का त्यों। यहां से सैकड़ों किलोमीटर दूर एक अलग-थलग गांव में पड़े रहने के बावजूद इन बाइस सालों के हर क्षण को मैने इसी शहर में जिया है।

इतने सालों बाद इसे देखने की तमन्ना आज कहीं जाकर पूरी हुई है। मन उल्लास से भर उठा है। ....परन्तु यह स्टेशन इतना बदला-बदला क्यों लग रहा है? कहीं कोई गलत स्टेशन पर तो नहीं उतर गया हूं? नहीं.......नहीं, यह तो वही स्टेशन है। नाम

www.eTelangana.org

भी वही है......जब मैने शहर छोड़ा था तब यह कितना छोटा था। परन्तु अब तो पहचान में ही नहीं आ रहा है। .....पाँच पाँच प्लेटफार्म......स्टेशन की भव्य इमारत......सजे हुए खिलौने, मैगजीनों के स्टॉल......शो केसों में बन्द एक से एक मॉडल। आंखे चौंधिया सी गई हैं।

कितना बदल गया है? पर यह बदलाव तो इसकी प्रगति की निशानी है। कितनी तरक्की कर ली है मेरे शहर के इस स्टेशन ने।

बाहर जाना चाहता हूँ। गेट पर काफी भीड़ है। रुक कर भीड़ का इन्तजार करने लगता हूँ। कल्पना उड़ान भरने लगती है - बाहर निकलते ही एक तरफ कतारों में रिक्शे खड़े मिलेंगे और दूसरी तरफ तांगे, हट्टे कट्टें सफेद, गेहुएँ, काले, चितकबरे घोडों से जूते हुए। जीनों में हिनहिनाते हैं तो कितना मजा आता है।...कोचवान के चाबुक की फटकार...... घोडों के टापों की एक लय में निकलती टक् - टक्...... टक् - टक् की आवाजें...... बीच-बीच में 'बाबू जरा हटके'...... 'भाई सम्भल के'...... 'चल बेटे चल'...... 'बहुत खूब - बहुत खूब' के गूंजते कोचवाल के बोल। ......तांगों पर बैठने का तो अपना ही मजा है। ऐसा लगता है, मानों उड़नखटोले में उड़े चले जां रहे हैं। ......यह शहर छोड़ने के बाद आज तक तांगा नही चढ़ पाया।

भीड़ के छंटते ही बाहर निकलता हूँ। परन्तु यह क्या? बाहर तो नजारा कुछ और ही है। तांगों के स्थान पर तो ऑटो रिक्शे खड़े हैं, पचासों की तादाद में...... और रिक्शों के स्थान पर, चमकती टैक्सियाँ। तांगो के लिए नजरें इधर-उधर ढूंढने लगती हैं।

"सॉब ऑटो?"

"देखो यहाँ पर तांगा नहीं है क्या?" मैं उससे पूछता हूँ।

एक सूट-बूट वाले आदमी को तांगों के बारे में पूछते हुए उसे कुछ आश्चर्य सा होता है- "इस जमाने में आप तांगें की बात कर रहे हैं साब?" आंखे मटकाता हुआ कहता है वह ऑटोवाला।

मुझे लगता है, सचमुच मेरा शहर बहुत आगे चला गया है और मैं बाइस साल पहले वाले स्थान पर ही हूँ।

"चल भाई चल।" मै ऑटो में बैठ जाता हूँ।

"कहां चलना है साब?"

"धनलक्ष्मी लॉज।"

"धनलक्ष्मी लॉज?" वह आश्चर्य से मेरी तरफ देखता है।

यह साला धनलक्ष्मी लॉज भी नहीं जानता है। ले-देकर सारे शहर में दस-पन्द्रह लॉज ही तो होंगे और उन सब में प्रसिद्ध है धनलक्ष्मी लॉज......मन ही मन सोचता हूँ- "अरे यार तू भी हद करता है, धनलक्ष्मी लॉज भी नहीं जानता है। वही लक्ष्मी टॉकीज के बगल में......।"

"मैं यहीं पर पैदा होकर यहीं पर बड़ा हुआ हूँ। पर ऐसे लॉज का नाम आज तक नहीं सुना है।"

मैं उसकी तरफ गौर से देखता हूं। इक्कीस-बाईस साल की उमर होगी उसकी। इसका मतलब जब मैने शहर छोड़ा था तब यह पैदा हुआ होगा।

"लगता है आप नये आए हैं शहर में?"

और लो, अपने इस शहर में मैं ही नया हो गया। जी चाहता है, उसके थोबड़े पर दे मारूं। समझा-बुझाकर चल देता हूं उसके साथ।

लक्ष्मी टॉकीज के पास उतर जाता हूं। देखता हूं-कितना

www.eTelangana.org

बदल गया है यह लक्ष्मी टॉकीज भी। लक्ष्मी टॉकीज से लक्ष्मी टॉकीज सेवेन्टी एम.एम.-ए.सी.। कहां गयी टीन की छतों वाला अनाज रखने के गोदाम का-सा टॉकीज जिसमें मोहल्ले के हम छोकरें चवन्नी टिकट में जमीन पर बैठ कर सिनेमा देखते थे।

थोड़ी दूरी पर ही तो गांधी पार्क होना चाहिए। चौरस्ते के बीचों-बीच। चारों तरफ सड़क और बीच में पार्क। पार्क के हरे-भरे लॉन में हम सब बच्चे उधम चौकड़ी मचाते थे। ......पर यहाँ पर तो कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा है। कहां गायब हो गया है पार्क? ......बाप रे बाप, ट्रैफिक ......ऑटो ......कार ......स्कूटर ......साइकिलें ......सड़क क्रॉस करना ही मुश्किल हो रहा है। लगता है ट्रैफिक बढ़ने के साथ-साथ पार्क भी सड़क में परिवर्तित होता चला गया है और घटते-घटते यहां पर केवल गांधी जी ही शेष रह गये हैं।

पर यह भी तो प्रगति की निशानी है। सचमुच कितनी प्रगति कर ली है मेरे इस शहर ने। यहीं पर धनलक्ष्मी लॉज था। परन्तु उसका तो कोई अता-पता ही नहीं है। उसके स्थान पर चार-मंजिली बिल्डिंग खडी हो गई है जिस पर मेट्रो लॉज का बड़ा सा बोर्ड लटक रहा है। उसमें ही चला जाता हूं।

फ्रेश होकर बाहर आता हूँ। ......चलो मोहल्ले का एक चक्कर काट लें-सोचता हूं। ......याद आया, यहीं पास में ही तो रमेश का वन्दना सॉ-मिल था। वह वहीं पर है या बोरी-बिस्तर बांध कर कहीं चला गया है मेरी ही तरह?

वंदना सॉ-मिल अपनी जगह पर ही मौजूद है पर इसका बहुत विस्तार हो चुका है। पहले तो केवल एक मशीन थी, लकड़ी काटने वाली छोटी-सी, परन्तु अब चार-चार बड़ी मशीनें लग गई

हैं। घर्र्-घर्र् करते हुए लकड़ियों के बड़े-बड़े लट्ठों की कटाई हो रही है। एक तरफ ट्रकों से माल उतारा जा रहा है, दूसरी तरफ कटा हुआ माल लोड किया जा रहा है। बल्लियों के ढेर पहाड़ों की तरह रखे हुए हैं। कारोबार बहुत ही बढ़ गया है।

मेरे बचपन का दोस्त रमेश। हर पल हम दोनों साथ-साथ रहते थे। ......साथ-साथ नदी में तैरने जाते थे। ......साथ-साथ स्कूल से भागते थे...... साथ-साथ बाग में अमरूद तोड़ने जाते थे। ......परीक्षा में दोनों एक दूसरे की पूरी तरह नकल करते थे। ......रमेश और मैं कहीं से अलग नहीं थे।

रमेश के बारे में किसी से पूछना चाहता हूं परन्तु केबिन के नेमप्लेट पर 'प्रोप्राइटर : रमेश शाह' लिखा हुआ पाता हूं। धड़ल्ले से एयरकंडीशंड चैम्बर का दरवाजा पुश कर अन्दर पहुँच जाता हूं। फोम वाली रोटेटिंग चेयर पर गोरा सा, गोल्डन फ्रेम का चश्मा लगाए बैठा आदमी मेरी तरफ देखता है। जुल्फें माथे पर झूल रही हैं - 'तो साला यही रमेश है। ......कितना बदल गया है। पहचान में ही नहीं आ रहा है। पर साले के बालों का स्टाइल नहीं बदला है अभी तक......।'

"पहचाना नहीं?" लापरवाही से कुर्सी पर बैठते हुए पूछता हूं। एक अनजान आदमी को असभ्य तरीके से इस तरह ऑफिस में घुसकर कुर्सी पर बैठते देख उसे आश्चर्य होता है। माथे पर बल देता हुआ कहता है, "नहीं तो।"

"याद कर।"

मेरे इस सम्बोधन से वह कुछ चिढ़ सा जाता है।

"बोलो साफ-साफ।" उसके पास शायद इस सब के लिए वक्त नहीं है। पर मैं साधिकार कहता हूँ-"अरे मैं तेरा दोस्त काली...... ।"

www.eTelangana.org

"कौन काली?"

"काली यानी कालीचरण। चौथी तक तेरा क्लॉसमेट था न। ......याद है एक बार तूने पत्थर से मेरा माथा फोड़ दिया था। देख उसका निशान अभी तक है...... ।" माथे पर बना अर्धचन्द्राकार निशान उसे दिखाता हूं।

उसके माथे पर बल पड़ जाते है, "हां हां, कुछ याद सा आया...... ।"

मैं पिछले बाइस सालों से इसको हर पल याद करता रहा हूं और इसको मेरा नाम तक याद नहीं है। चलो, कम-से-कम अब तो याद आया।

"क्या कर रहा है?"

सोचा था याद आते ही कुर्सी से उठकर मुझसे लिपट जाएगा।

"मास्टरी गांव में।"

"अच्छा-अच्छा।" वह रूखेपन से कहता है।

"महसूस करता हूं कि उसकी मुझमें कोई दिलचस्पी नहीं है।"

फोन घुमाकर वह किसी से बिजनेस के सिलसिले में बात करने लगता है।

"तो मै चलूं?" साला क्या कहता है, देखने के लिए उससे कहता हूं।

"ठीक है, चलो। कभी कभी मिलते रहना।" हाथ मिलाते हुए कहता है।

बाहर आ जाता हूं। ......सोचता हूं - बहुत बड़ा कारोबार है। हजारों का लेन देन है। ......देख तो रहा हूं, बात करने तक की

फुर्सत नहीं है...... ।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर बाईं तरफ एक मोड़ आता है। उस मोड़ से कुछ आगे बढ़ने पर सरकारी ऑस्पताल और उसके पीछे करीब एक फर्लांग की दूरी पर हमारा मोहल्ला है। शहर में होता हुआ भी लगभग शहर से कटा हुआ।

मोड़ के आगे सब कुछ परिचित-सा लगता है। जिस हालत में सरकारी ऑस्पताल को छोड़ कर गया था, वह अब भी वैसा ही है। बस जहां तहां उसका प्लॉस्टर उचट गया है। ......आगे मोहल्ले में भी तो कोई बदलाव नहीं दिखलाई दे रहा है। बाइस साल पहले जैसा था, अब भी हू-ब-हू वैसा ही है। वही उबड़-खाबड़, कच्ची सड़क...... वे ही घर...... वे ही झोपड़ियां...... हाँ, झोपड़ियों के बीच कुछ झोपड़ियां और बन गई हैं और कुछ झोपड़ियां छोटे छोटे घरों में परिवर्तित हो गई हैं। बदलाव के नाम पर मोहल्ले में बिजली आ गई है। ......जैसा मैने अपने जेहन में मोहल्ले को सजाए रखा था, वह हू-ब-हू वैसा ही है। ऐसा लगता है बाइस वर्ष पूर्व नहीं, कल परसों ही मोहल्ले को छोड़ा है। कदम जाने पहचाने रास्ते पर बेफिक्री से बढ़ने लगते हैं।

कितनी खुशी हो रही है अपने इस मोहल्ले को देखकर।यह मेरा ही मोहल्ला है, मेरा अपना। इसके चप्पे-चप्पे से वाकिफ हूं। ......यह रहा राघव बाबा का मंदिर ......यह रही गौशाला ......अभी तक मुझे याद है, यहां की बारह नम्बर वाली मोटी तगड़ी सफेद गाय, चालीस सेर दूध देती थी एक बार में। किस तरह प्यार से हम उसके गर्दन पर हाथ फेरते थे और वह अपनी गर्दन ऊपर उठाती ही जाती थी सहलाने के लिए। ......यह रहा कल्लू मियां तांगे वाले का घर। घर कुछ ढह सा गया है। पीपल के झाड़ के नीचे उचटे

www.eTelangana.org

हुए रंगो वाला टूटा-सा पुराना तांगा पड़ा हुआ है और साथ ही खूंटे से एक मरियल सी घोड़ी बंधी हुई है।

मैं फिर बाईस वर्ष पूर्व की स्मृतियों में पहुंच जाता हूं। क्या शान थी कल्लू मियां की। लम्बा-तगड़ा आदमी ......चौड़ा सीना ......पहलवान था पहलवान। अखाड़े में नामी-नामी पहलवालों को पछाड़ देता था। ......और उनका घोड़ा शेरू ......शेरू तो बस शेरू था। उनका इशारा पाया नहीं कि हवा से बातें करने लगता था। ...... और तांगे को दुल्हन की तरह सजाकर रखता था कल्लू मियां।



घर के दहलीज पर एक दुबला-पतला बूढ़ा आदमी बैठा खांस रहा है। पसलियां निकल आई हैं। दाढ़ी के पके बाल खूंटों की तरह उभरे हुए हैं।

"कल्लू मियां हैं क्या घर पर?" पूछता हूं उससे।

बूढ़ा मुझे घूरता है।

"क्या काम है?"

"उनसे मिलना है।"

"मैं ही हूं कल्लू मियां।"

अचानक मुझ पर गाज-सी गिरती है। विश्वास ही नहीं होता है।

"कल्लू मियां ही हैं आप? ......अरे यह क्या हालत बन गई है आपकी?" आश्चर्य से मेरे मुंह से निकलता है और वह अवाक् देखता है मुझे न पहचान कर।

"नहीं पहचाना मुझे? ......शिवानंद का बेटा कालीचरण। ......बाइस साल पहले मोहल्ला छोड़कर चले गये थे अपने देश..... ।"

"अरे तू शिवानंद काका का बेटा है?" और उसे ज्यादा कुछ बताने की जरूरत नहीं पड़ती है। "अरे! तू कित्ता बड़ा हो गया रे? ......कहां है रे? ......क्या कर रहा है रे? ......काकी कैसी है रे?" ......ढेरों प्रश्न।

"काका ये क्या हालत हो गई है तुम्हारी?"

"क्या करें बेटा! वक्त वक्त की बात है।"

"और तुम्हारा तांगा और शेरू......?"

एक फीकी-सी क्षीण मुस्कान उसके चेहरे पर आ जाती है। -"आजकल तो ऑटो का जमाना है। ......और शेरू...... वो तो कब का इस दुनिया को छोड़कर चला गया है।"

कितनी ही देर तक वह अपनी आप-बीती सुनाता रहता है। उसकी बातों से पता चलता है कि उसकी बातों को, इस तरह आत्मीयता से सुनने वाला कोई नहीं रहा मोहल्ले में। सबको अपने अपने काम से मतलब।

"इधर आ" - एक तीस बत्तीस साल के आदमी को गली पार करते देख कल्लू मियां पुकारता है।

www.eTelangana.org

"क्या बात है मियां?" वह आदमी हमारी तरफ आता हुआ कहता है। उसके कपड़ों में तेल और डीजल के काले काले धब्बे। लगता है, किसी गैरिज में काम करता है हेल्पर-वेल्पर का।

"पहचाना इसको?"

वह आदमी अचकचाकर मेरी तरफ देखता है। 'नई तो' के लहजे में सिर हिलाता है।

"अरे ये कालीचरण है कालीचरण। शिवानंद काका का बेटा।"

"काली?" लगता है अचानक उसे विश्वास ही नहीं होता है।

"और ये रघु है।" .....। कल्लू मियां मुझसे कहता है।

"अरे रघु तू.....।" अचानक मेरा चेहरा खिल उठता है और अपने आप को संभाल न पा, बांहे फैलाकर उसकी तरफ बढ़ता हूं परन्तु मेरे कपड़े अथवा स्टेटस को देख, अथवा किसी और कारण से गले मिलने में वह संकोच करता है परन्तु इस सबकी परवाह किये बिना उसे बांहों में ले छाती से लगा लेता हूं।

उससे अपने दूसरे दोस्तों का हाल पूछता हूं। बहुत देर तक हम दोनों की बातें होती रहती हैं।

उसके साथ मोहल्ले में घूमता हूं। वह बताता है-फलां दोस्त, फलां जगह काम कर रहा है..... फलां दोस्त फलाने गांव में है..... सब पेट पालने के लिए पंख निकल आये चिड़ियों के बच्चों की तरह घोसलों से निकलकर अलग अलग दिशाओं में चले गये है।

मोहल्ले के बाद उसके साथ शहर घूमने निकलता हूं। परन्तु महसूस करता हूं कि इतनी बातें करके और साथ साथ घूमते

हुए भी उसका व्यवहार मेरे प्रति कुछ कटा-कटा सा है। औपचारिकतापूर्ण ही अधिक है।

"चलो! अपने स्कूल का एक चक्कर काट लेते हैं".....। मैं रघु से कहता हूं। बचपन का यह स्कूल अभी भी मेरे दिमाग में ज्यों-का-त्यों है।

रघु कुछ नहीं कहता है। बस सर नीचा किये चलता रहता है। इस स्कूल से मैं भावनात्मक स्तर पर जुड़ा हुआ हूं।

सोचता हूं सबसे पहले स्कूल गेट के पास पहुंचकर उसकी मिट्टी को माथे से लगाऊंगा। .....फिर सारे स्कूल का चक्कर काटूंगा। .....कमरों के दर्शन करूंगा। .....चौथी कक्षा में जाकर जहाँ पर मैं बैठता था वहीं टाट पर बैठूंगा ..... जब मैनें स्कूल छोड़ा था तब चौथी क्लास में ही तो था। शायद अपनी भावनाओं पर काबू न पा सकूँ और स्कूल के मैदान में पागलों की तरह भागने लगूं.....।

"अरे यहां तो स्कूल-विस्कूल कुछ नहीं है। बड़े बड़े शापिंग काम्पलेक्स बन गये हैं.....।" आश्चर्य से मेरी आँखे फटी-की-फटी रह जाती हैं।

"हाँ आठ दस साल पहले स्कूल को तोड़ दिया गया है और ये शॉपिंग काम्पलेक्स बना दिये हैं।"

आलीशान काम्पलेक्स है। बड़े बड़े शोकेसों में सामान सजे हुए हैं। लोगों की भीड़ भाड़ है। .....स्कूटर, कारों का रेला है।.....

दूसरे रास्ते से वापस लौटने लगते हैं। कुछ शोर-गुल सुनाई पड़ता है। ....."अरे यह तो बेलदारों का टोला है।" हम उधर ही बढ़ जाते हैं।

www.eTelangana.org

लोगों की भीड़ लगी हुई है। ये सब बेलदार लोग हैं। बोरी बिस्तर बांधे अपने बीवी-बच्चों के साथ झाड़ के नीचे.....। घर्र-घर्र की तेज आवाज से साथ एक बुलडोजर बढ़ रहा है उनकी झोपड़ियों की ओर। बेंलदारनी औरतें रो रही हैं छाती पीट-पीटकर .....बच्चे मासूमियत और दहशत से भरे अपनी उजड़ती झोपड़ियों की तरफ निहार रहे हैं। मर्द मिट्टी के बुत बने खड़े हैं। .....सूरज आकाश पर तेज चमक रहा है।

"यह क्या हो रहा है?" मैं एक बूढ़े से पूछता हूं।

"और क्या हो रहा है, देख तो रहे हो सामने। हमारी छाती पर बुलडोजर चला रहे हैं। .....यहां पर बीड़ी बनाने का कारखाना बनाने के लिए हमारे झोपड़ों को उजाड़ रहे हैं.....।"

मैनें जब से होश संभाला है, उनको यहीं पर अपने डेरों में बसा पाया है। इस बात को तीस साल तो हो ही रहे हैं और इससे भी आगे अपने बाप-दादाओं के वक्त से ये लोग रह रहे हैं।

"इसके बदले और कहीं कुछ जमीन-वमीन दे रहे हैं? .....कुछ मुआवजा-वुआवजा?....."

"कहां का मुआवजा-वुआवजा। ज्यादा बात किये तो हम पर केस करेंगे बोल रहे हैं, सरकारी जमीन पर कब्जा करने के लिये।"

यह तो सरासर अन्याय है। ये लोग बाप-दादाओं के जमाने से यहां रह रहे हैं। भला यह सरकारी जमीन कैसे हुई? इस पर तो इनका ही हक बनता है। इस तरह जोर-जबरदस्ती से कैसे खाली करा सकते हैं?

बुलडोजर से झोपड़ियों को रौंदते देखता रहता हूं। आश्चर्य होता है, इतना घोर अन्याय हो रहा है..... इतना जुल्म ढह रहा

है..... बाप दादाओं के जमाने की बनी उनकी झोपडियों को उनकी अपनी आंखों के सामने ही तहस-नहस किया जा रहा है और एक आदमी भी इसे रोकने की कोशिश नहीं कर रहा है। .....इतना बड़ा हादसा हो रहा है और केवल दो पुलिस वाले ही यहाँ पर मौजूद हैं। बस एक-दो औरतें अपने उजड़ते झोपडों के सामने छाती पीटती रो रही हैं और दोनों पुलिसवाले उन्हें घसीटकर किनारे कर रहे हैं। .....मेरे शहर के लोग इतने ठंडे दिमाग वाले हो सकते हैं, ये तो कभी कल्पना भी नहीं कर सकता था मैं। मेरे इस शहर को क्या हो गया है? .....मेरा यह शहर भला इतना नपुंसक क्यों हो गया है? .....मेरे शहर के लोग भला इतने चेतना-शून्य क्यों हो गये हैं? .....इसे तो अपना शहर कहते हुए मेरी गर्दन शर्म से झुकी जा रही है। .....अगर यही घटना मेरे अपने गांव में हुई होती तो?..... बाप रे बाप! क्या से क्या नहीं हो जाता। पहले तो कोई इस तरह का कदम उठाने का साहस ही नहीं करता और करता तो ज्वालामुखी ही नहीं फूट पड़ता?..... सारा इलाका बंदूकधारी पुलिस वालों से नहीं भर जाता? .....औरतें बुलडोजर के सामने न लेट जातीं? .....मर्द सीना तानकर नहीं खड़े हो जाते? .....दूध पीते बच्चे तक आक्रोश में न भर उठते? .....चीख-चिल्लाहट..... गाली गलोच..... मार-धाड़..... लाठी-चार्ज और फायरिंग की नौबत न आ जाती?....

पर अपने इस गांव को आज तक मैने अपना गांव नहीं माना था। आज तक मन से इसे अपना गांव कबूल नहीं किया था। हालांकि पिछले बाइस सालों से उसी गांव में रह रहा हूं। प्राइमरी एजुकेशन के बाद की सारी पढ़ाई वहीं पर हुई। वहीं पर नौकरी मिली। शादी भी उसी गांव में हुई। बच्चे-कच्चे सभी उसी गांव में हुए। मेरी हर आवश्यकता को पूरा किया है उस गांव ने। परन्तु उस

www.eTelangana.org

गांव को अपना गांव कभी नहीं माना है मैने।.....उससे कभी इतनी अंतरंगता कायम नहीं कर सका। बस अपने बचपन के इस शहर को ही अपना शहर मानता रहा अब तक।.....

पर अब मेरा यह सपना चकनाचूर हो गया है। मेरे सपने का शहर टूटकर चूर-चूर हो गया है। यह मेरे सपने का शहर नहीं रहा। मैं सब कुछ बरदाश्त कर सकता हूं..... कल्लू मियां का बेरोजगार होना बरदाश्त कर सकता हूँ..... पार्क का चौड़ी सड़क में परिवर्तित होना बरदाश्त कर सकता हूँ..... लोगों के दिलों से आत्मीयता का लुप्त होना बरदाश्त कर सकता हूँ..... लाखों में खेलने वाले दुनियादारी में लिप्त रमेश जैसे दोस्त का रूखा बर्ताव बरदाश्त कर सकता हूँ..... स्कूल बिल्डिंग का शॉपिंग काम्पलेक्स में ढलना भी बरदाश्त कर सकता हूँ, परन्तु अन्याय को इस कदर ठंडे दिमाग से सहना कभी बरदाश्त नहीं कर सकता हूँ, लोगों का इतना चेतना-शून्य होना कभी बरदाश्त नहीं कर सकता हूँ....।

मेरे गाँव में भी अन्याय होता है, अत्याचार होता है। झोपड़ियां उजाड़ी जाती हैं, औरतों की इज्जत लूटी जाती है। परन्तु वहाँ उसका विरोध भी है। अन्याय के साथ साथ जबरदस्त विरोध। पर इस शहर में? .....यहां तो केवल अन्याय है, विरोध नहीं है। और इसका कारण? .....कारण यही हो सकता है कि ये लोग संगठित नहीं हैं। पर इस शहर के लोग और भला कब संगठित होंगे...... और......

.....और संघर्ष में लीन अपने गांव की अचानक याद आने लगती है। उससे अचानक एक अंतरगता सी कायम हो जाती है। आज इतने दिनों बाद वह गांव मुझे अपना गांव लगने लगा है। जो गांव आज तक मुझ से कटा हुआ था .....जिस गांव से आज

तक मैं कटा हुआ था, आज वह गांव अचानक मुझसे जुड़ गया है, मैं उससे जुड़ गया हूँ। उसकी मिट्टी से जुड़ गया हूँ।

गांव की बहुत याद आने लगती है। मन बैचेन-सा हो जाता है। जल्द-से-जल्द वहां पहुंच जाना चाहतां हूँ - 'न जाने मेरे गांव का कौन सा सपूत अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करता हुआ मार दिया गया हो.....।

❁ ❁ ❁

'वर्तमान साहित्य' फरवरी-92
कृष्ण प्रताप स्मृति कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत।

www.eTelangana.org

हिरणी



कोलियरी की हेवी ट्रैफिक वाली धूल और गड्ढों से भरी ऊबड़-खाबड़ सड़क पर हिचकोले खाने के बाद नेशनल परमिट वाली हरे रंग की ट्रक हॉफते हुए आकर टोल टैक्स के पोस्ट पर रुकती है। गोदावरी पर बने हुए नए ब्रिज की चौड़ी और कांच की तरह समतल, साफ-सुथरी सड़क को देख कर उसकी जान में जान आती है। अपनी थकान को गुबार के रूप में उगाल, नए उत्साह से ब्रिज की छाती पर दौड़ने लगती है। बरसात के दिनों में लबालब बहने वाली गोदावरी, समाज द्वारा प्रताड़ित किसी नवयौवना की तरह सूखकर काँटा हो गई है। उसके असमय पक चुके बालों की तरह सफेद रेत धूप में तप रही हैं।

ट्रक की केबिन में कुल मिलाकर तीन लोग बैठे हुए हैं। एक है वह, दूसरा ड्राइवर और तीसरा ट्रक के बंपर की तरह कूबड़ निकली पीठ वाला दुबला-पतला क्लीनर।

ग्रीष्म की चिलचिलाती धूप. गरम हवा के थपेड़ों से बचने के लिए ड्राइवर ने एक सफेद कपड़ा लपेट कर अपने सर और कानों को ढंक लिया है। जगह-जगह उचट गई सड़क की तरह उसके चेहरे पर भी जहां-तहां खड्डे बने हुए हैं।

"दरवाजा बंद कर दो न! गरम हवा मार रहा है।" दाहिने कान पर तह किया रूमाल रखता वह कहता है।

"बंद कर दिए, तो साब, केबिन में गरमी से बॉयलर चिकन जैसे पक जाएंगे।"

'ठीक ही तो कह रहा है। इंजन के ढक्कन से भाप-सा निकल रहा है।' पावों के पास गरमी महसूस कर वह सोचता है।

सीधी-सपाट सड़क से ट्रक फिर ऊबड़-खाबड़ में आ गई है। फिर वही कोलियरी। रोज सैकड़ों वाहनों को अपनी छाती पर झेलने-वाली सड़क, घावों से भरे किसी दुर्घटनाग्रस्त खदान कामगार की तरह जगह-जगह से उचटी हुई है। वर्षा-काल में मिट्टी के बह जाने के कारण किनारों में तीक्ष्ण कटाव-सा आ गया है....। और ऊपर से सड़क को और चौड़ा करने के लिए जगह-जगह पर गिट्टियों के ढेर।

"साला इस सड़क पर गियर बदल-बदलकर हालत खराब हो जाता है। जरा भी चूके तो समझो, गये बारा के भाव से..... इसकी मां का किरकिरी मारूं।"

सामने से आती जीप को बचाने के लिए तेजी से स्टीयरिंग घुमाकर कट मारता है। "देखो सॉब! कित्ता बड़ा एक्सिडेंट होते-होते बचा, कुच भी करो. चाहे तो भीख मांगकर जीओ। पर ड्राइवर बन कर मत पैदा हो।" वह बड़बड़ाता है।

"खदान की तुमारी नौकरी अच्छी है। सुकून की

www.eTelangana.org

नौकरी.....'' कुछ देर रुककर वह फिर कहता है।

'खाक सुकून की नौकरी। दूर के पहाड़ समतल ही दिखाई देते हैं।' कंठ के भारीपन से यह बात बाहर नहीं निकलती है। अंदर ही रह जाती है।

''लाइन पर निकले, तो वापस घर जाने तक कोई भरोसा नई रहता है। रास्ते में होते एक्सीडेंटों को देखकर तो दिल दहल उठता है।'' गहरी सांस खींचकर ड्राइवर फिर कहता है।

'खदान में उतरकर बाहर आने तक हमारा कौन-सा भरोसा रहता है। कब भरभराता हुआ कोयले का ढेर गिरा और कब उसके नीचे ढेर हुए' - उसकी सोच जारी है।

सामने कोयले के दो टिप्पर हैं। शायद पीछे भी, लगातार हॉर्न सुनाई पड़ रहा है। ऐसा लग रहा है मानों इस लॉरी को अपरहण किए चल रहे हों।

रेलवे लाइन पर फ्लाई ओवर ब्रिज बनाने के लिए ट्रैफिक को डायवर्ट करने के उद्देश्य से बनाई गई कच्ची सड़क पर से गुजर रही है यह ट्रक।

''तुमारा क्या है सॉब। आठ घंटे डूटि किये और घर चले। यहाँ तो पंद्रा-पंद्रा दिन तक बाहर रहना पड़ता है। कभी कभी तो महीना भर भी। ट्रक का ये कैबिन ही हमारी जिन्दगी बन जाता है।''

'बरखुरदार! खदान की नौकरी के बारे में भला तुमको क्या पता है। तुम कम से कम बाहर खुली हवा में तो सैर करते हो। रोज नई नई जगह पर जाते हो। पर हम...... ? खदान में उतरे, तो ऐसा लगता है, मानो पूरे आठ घंटे के लिए बिना खिड़की-

दरवाजे वाली अंधेरी काल-कोठरी में ठेल दिए गए हों। सांस लेना मुश्किल हो जाता है, दम घुटने सा लगता है। एक-एक पल एक-एक युग सा गुजरता है'...... अपने अंतर में।

ड्राइवर ट्रक लाकर पेट्रोल बंक के पास रोक देता है - ''चलो साब, कुछ नाश्ता कर लेते हैं। फिर खाना मिलने तक दो-ढाई बज जाएगा।''

''तुम करो, मैं चलते वक्त ही करके आया था।''

''चाय तो पी लो कम-से-कम।''

वह भी उतर जाता है।

लकड़ी के चकले को आड़े-टेढ़े ठोंककर बनाई गई बेंच पर बैठ ड्राइवर और क्लीनर तेल में सने अधपके पराठे, आमलेट के साथ खाये जा रहे हैं। चाय की चुस्की लेता वह घड़ी की तरफ देखता है। ग्यारह बज रहें है। चंद्रपुर पहुंचने तक तो चार बज ही जाएंगे। अगर समय पर यह ट्रक नहीं मिलती, तो? वह तो रेलगाड़ी से जाने के लिए रामगुंडम स्टेशन पर तैयार होकर गया था, पर वहां मालूम हुआ कि राघवपुरम् के पास कोई मालगाड़ी पटरी से नीचे उतर गई है। इसलिए सारी गाड़ियां लेट चल रही हैं। जी.टी. कब आएगी? आएगी भी या नहीं- यह भी अनिश्चित था. डायरेक्ट बस भी तो नहीं थी। ये तो गनीमत समझो कि वो ट्रांसपोर्ट वाला संपत सेठ इत्तफाक से स्टेशन पर मिल गया था और पूछने पर बताया था कि नागपुर जाने के लिए यह ट्रक लोड लेकर रेडी है। उस समय उसकी जान में जान आई थी। अगर समय पर यह ट्रक नहीं मिलता, तो रात में जाकर कहां वकील का घर ढूंढता। चंद्रपुर अपना परिचित एरिया भी तो नहीं है। बात को कल पर टाला भी तो नहीं जा सकता था। कल ही पेशी जो है।

www.eTelangana.org

"चलो साब चलते हैं।" ड्राइवर के संबोधन से उसके विचारों को एकाएक ब्रेक-सा लगता है। वह ट्रक में चढ़कर फिर से बैठ जाता है। दूसरी तरफ से ड्राइवर भी अपनी सीट पर आकर बैठ जाता है। खाली पेट में कुछ पड़ने से ट्रक स्टार्ट होकर कुछ आराम से रेंगने लगती है। क्लीनर नीचे ही है। चलती ट्रक में ही लपककर लंगूर की तरह चढ़ जाता है और दरवाजे पर एक टांग अंदर और दूसरी बाहर की तरफ रख बैठ जाता है।

"लगता है, तुमको होटल का खाना पसंद नई है।" ड्राइवर पूछता है।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं है।"

"ठीक ही तो है। जब घर का खाना नसीब हो, तो कोई भला होटल में क्यों जाए। हमको तो आदत हो गया है।" दोनों कुहनियों से स्टीयरिंग संभाले सिगरेट सुलगाकर कश लेता हुआ कहता है।

'घर का खाना?' अंतर में कहीं कुछ चटकता है।

'उसका घर है? पत्नी है, बच्चे हैं......फ्रिड्ज है...... टी.वी. है...... पर घर कहां है? वह तो कभी का उजड़......'

धूल और सूखे पत्तों को अपनी चपेट में लेता हुआ एक बड़ा सा बवंडर गोल-गोल घूमता हुआ ट्रक के सामने से गुजर जाता है। ट्रक सुनसान में चली जा रही है। सड़क के दोनों तरफ मैदान, सूखा-ही-सूखा। धूप से आंखे मिचियां-सी जा रही हैं। सरकार द्वारा सड़क के दोनों किनारें लगाए पेड़ कभी का दम तोड़ चुके हैं। इक्के-दुक्के पेड़ इधर-उधर दिखलाई दे रहे हैं। पेड़ क्या है? केवल ठूंठ मात्र। अकालग्रस्त क्षेत्र के लोगों की तरह-सूखकर कांटे हो जाने वाले मानवों के अस्थि-पंजरों की तरह।

"अबे देक बे, पीछे वाला टैर कुछ गड़बड़ लग रहा है।"

ड्रायवर आज्ञा देता है।

'ठीक है उस्ताद।' कहता कुबड़ा क्लीनर फिर से लंगूर की तरह लपक कर चलती गाड़ी में ही बॉडी पर चढ़ जाता है।

"सॉब पंद्रा दिन हुआ है घर से निकले हुए। कभी-कभी तो महीनों घर से बाहर रहना पड़ता है। न मियां की खबर बीवी को, न बीवी की खबर मियां को...... ।"

'यहां पर साथ में रहकर भी कौन किसकी खबर रखता है. एक ही घर में, एक ही कमरे में ही नहीं, एक ही बिस्तर पर रहते हुए भी दोनों का अलग-अलग संसार। एक उत्तरी ध्रुव, तो दूसरा दक्षिणी। दोनों के संसार का अलग-अलग होना कब आरम्भ हुआ था? ......क्यों हुआ था?'

वह गंभीरता से सोचता है, परंतु उसे कोई जवाब नहीं मिलता है। उलझनों में घिर-सा जाता है। आज पहली बार इतने विस्तार से अपने गत जीवन के बारे में सोच रहा था। उसे लगता है, उसके जीवन की गाड़ी इसके पहले आई फ्लाई ओवर ब्रिज के रोड की तरह मुख्य पुख्ता सड़क से हटकर कच्ची सड़क पर आ गई है, या फिर किसी रेगिस्तान में भटक गई है। चारों तरफ जिधर भी देखो, रेत-ही-रेत।

वह ड्राइवर की सीट के पीछे कुछ सरककर बैठ जाता है। उसकी दृष्टि साइड मिरर पर पड़ती है। मिरर में उसे वह स्वर्ग दिखलाई देता है। बेलचा से उठा-उठाकर कोयला टोकरी में भर रहा है। पसीने से लथपथ। अंधेरे खदान में कोयले के ढेरों के बीच कहीं उसका चांद-सा खिला मुखड़ा दिखलाई पड़ता है। थकावट के कारण उसकी सांसे जोर जोर से चल रही है। परंतु इन सांसों में उसकी गरम गरम सांसे भी समाने लगी हैं। उसकी थकावट न जाने

www.eTelangana.org

कहां गायब हो जाती है। फिर उसे मिरर (आइने) में दिखलाई पड़ता है - वह बदली (पाली) से लौट रहा है और वह आंगन में गेट के पास उसका इंतजार कर रही है।.... कोयले की सिगड़ी पर रखे काले घड़े में नहाने के लिए तैयार गरम पानी....वह नहा रहा है और वह हाथ में तौलिया पकड़े खड़ी उसका इंतजार कर रही है।

'पर यह क्रम कब टूटा...... ?'

ट्रक के हॉर्न से उसके विचारों का तांता टूटता है। उसकी दृष्टि ट्रक के आइने पर ही है। आईने में पेड़...... पौधे...... कंकड़-पत्थर सब गोल-गोल घूमते हुए तेजी से पीछे भागे चले जा रहे हैं।

आगे चढ़ाव है। गाड़ी थर्ड गेयर में आ गई है।

'दोनों की सांसों का अलग-अलग होना कब आरंभ हुआ ?' विचारों की टूटी हुई कड़ी फिर से जुड़ने लगती है।

"उस्ताद! पीछे वाला चक्का पंचर हो गया लगता है!" बॉडी में से ही अपना कुबड़ा धड़ बाहर निकाल क्लीनर झुककर केबिन में झांकते हुए कहता है।

"चलो, हो गई छुट्टी" ड्राइवर के मुंह से निकलता है- "इसकी मां का किरकिरी मॉरू, गरमी में जब देखो, तब यई टंटा।" गति धीमी करता हुआ, ट्रक को इमली के झाड़ के नीचे लाकर रोकता है।

वह उतरकर इमली के उभरी हुई जड़ पर पांवों के बल उकड़ूँ बैठ जाता है।

उसकी सोच जारी है। क्लीनर जैक घुमाते हुए जिस तरह लॉरी को ऊपर उठाता जा रहा है, उसका जीवन भी उसी तरह ऊँचा, और ऊंचा उठता चला गया था, भारीपन के साथ ही सही-पहले कोल फिलर...... फिर कोल कटर...... कोल कटर

से सरदार और अब ओवरमेन...... पहले भी खदान में ज्यादा समय देता था और अब भी, पर दोनों में फर्क है। तब वह पदोन्नति के लिए खदान में खून-पसीना एक करता था और अब घर से दूर रहने के लिए खदान में ज्यादा वक्त गुजरता है।

इस तरह विचारों की खिचड़ी पक ही रही थी कि क्लीनर पंक्चर वाला चक्का निकालकर दूसरा फिट कर देता है। सब अपनी अपनी सीट पर आकर बैठ जाते हैं। ऊपर से नीचे तक पसीने से लथपथ कुबड़ा क्लीनर ऐसा लगता है, मानो अभी-अभी पानी में डुबकी लगाकर वैसे ही आ गया हो। थकावट के बावजूद उसके चेहरे पर काम को पूरा करने की संतृप्ति का भाव है।

ड्राइवर के भी कपड़े भीग चुके हैं। सड़क पर धूप में पिघले डांबर की तरह उसके चेहरे पर पसीना बह रहा था।

ट्रक के चलने में कुछ सुकून-सा लगता है।

रास्ते में कुछ लोग रोकने के लिए हाथ दिखाते हैं, पर वह नहीं रोकता है।

"लगता है, इस रूट में बहुत देर से बस नई आई।" ड्राइवर कहता है।

अचानक एक बूढ़ा सड़क के बीचों-बीच आकर खड़ा हो गाड़ी रुकवाने की कोशिश करता है। सड़क के किनारे सागवान के पेड़ के नीचे हाथ में थैली पकड़ी एक लड़की खड़ी हुई है।

"तेरी मां का बुड्डा मारूँ, देखो, कैसे सड़क के बीचों-बीच आकर लॉरी रोकवा रहा है। अगर थोड़ा भी ब्रेक काम नई किया, तो टें बोल जाएगा।" ड्राइवर का मिजाज कुछ चिड़चिड़ा सा हो जाता है।

"उस्ताद! बुड्ढे के सात में छोकरी भी है। ले लो, टेम

www.eTelangana.org

पास हो जाएगा।" क्लीनर खी-खी कर हँसता है।

"इस मादर...... को तो हर बखत......" कहते हुए गाड़ी रोक देता है।

लॉरी के पास आई उस लड़की को देख उसे अश्चर्य-सा होता है।

'अरे, यह छोकरी इतने धूप में, इस जंगल में कैसे?'

वह यह सोच ही रहा था कि बूढ़ा चढ़ने लगता है। क्लीनर उसका हाथ पकड़कर अंदर केबिन में खींच लेता है। फिर वह छोकरी चढ़ती है। बिना किसी सहारे के एक हाथ में थैली और दूसरे से लॉरी का हैंडिल पकड़ चट्-चट् केबिन में चढ़कर बैठ जाती हैं, इतनी तत्परता से कि उसे विश्वास ही नहीं होता है।

वह और उलझन में पड़ जाता है। जेहन के किन्हीं परतों में दबी स्मृतियों को कुरेदते हुए उसका नाम...... और उससे संबंधित सभी विषयों को याद करने की कोशिश करता है...... हां 'गंगा'...... 'गंगा' ही न?

गंगा भी उसे पहचानकर उसकी तरह ही आश्चर्यचकित हो उससे न जाने कितने सारे प्रश्न पूछेगी कह कर वह सोचता है। परन्तु वह तो ऐसा कुछ न कर अनजान-सी ही बनी बैठी हुई है।

"गंगा"- वह उसकी तरफ देख उसे संबोधित करता है।

"मेरा नाम 'गंगा' नई, 'जमुना' है।" बिना किसी हिचकिचाहट के वह कहती है और फिर - "बाप रे बाप क्या गरमी है" कहती हुई साड़ी के पल्लू से चेहरा और गर्दन के आसपास का पसीना पोंछने लगती है।

गाड़ी ने रफ्तार पकड़ ली है। उस लड़की के आने से केबिन में एक विचित्र-सा माहौल बन गया है। ड्रायवर अपनी

सीट पर तन कर बैठ गया है।

उसे विश्वास ही नहीं होता है- उसे क्या हो गया है? क्या उसकी याददाशत क्षीण हो गई है? वह एक बार गौर से फिर उसकी तरफ निहारता है। गले में काली मोतियों का मंगलसूत्र। पूर्ण रूप से शादीशुदा छोकरी लग रही है। बिलकुल अनपढ़ - गंवार। क्या एक-दूसरे से इतने मिलते-जुलते लोग भी हो सकते हैं?

"तू मल्लमा की बेटी नहीं है?" वह कुछ साहस कर फिर से, अपने-आपको रोक पाने में असमर्थ होकर पूछता है।

वह उसकी तरफ देखती है। चेहरे पर भोलापन है - "कौन मल्लमा? मेरी मां का नाम लक्ष्मी है।" वह जवाब देती है और उसके हाथ से पत्रिका ले इस तरह पन्ने पलटने लगती है, मानो उसकी पूछी हुई बातों में उसे कोई दिलचस्पी नहीं है।

बिल्कुल संदेह नहीं है। गंगा ही है। पर क्यों वह अपरिचित बने रहना चाहती है। जाने दो, उसे क्या? पर क्यों लोग इस तरह एक-दूसरे से इतने अपरिचित बनते चले जा रहे हैं?

"तेरे को पढ़ना आता है?" पत्रिका के पन्ने पलटना देख कुबड़ा क्लीनर कुछ आश्चर्य से कहता है।

"बी.ए. पास हूँ?" खिलखिला कर हँसती हुई चट् से जवाब देती है।

क्लीनर और ड्राइवर सहसा ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं। वह भी उनकी हँसी में अपनी हँसी मिला देती है।

कुछ दूरी पर बैठा हुआ बूढ़ा शायद गंगा का बाप है। अगर ससुर होता, तो गंगा इस तरह उसके सामने नहीं बैठती, और बैठना पड़ता भी, तो इस तरह का बर्ताव नहीं करती।

www.eTelangana.org

वह बूढ़े से बात करना चाहता है, पर संभव नहीं लगता है। उस छोकरी से और कुछ पूछना चाहता है, परन्तु वह कुछ भी मौका नहीं दे रही है।

जंगल आरंभ हो गया है.... घना जंगल। पतझड़ के कारण सूखे पत्ते नीचे गिरे हुए हैं। जंगल का घनापन कुछ कम लग रहा है। सड़क के मोड़ पर एक बड़ा-सा-बोर्ड। उस पर छलांग लगाती हिरणी का चित्र. नीचे लिखा है - 'रिजर्व फारेस्ट-एन्ज्वाँय दि वाइल्ड लाइफ।'

यह छोकरी भी तो हिरणी से कोई कम नहीं लग रही है। कसा हुआ बदन, पतली कमर, चाल में फुर्ती, बातों में चपलता... चेहरे पर अजीब-सा ओज....

सामने सागवान के लोड से भरी लॉरी। फस्ट गेयर में भी भुई-भुई करती चढ़ाव चढ़ रही है। कुबड़ा क्लीनर बार-बार कनखियों से लड़की को निहार रहा है।

'लड़की जान-बूझकर अनजान बनने की कोशिश कर रही है। इसमें संदेह नहीं है।' वह सोचता है।

"बुरी नजर वाले तेरा मुंह काला" वह कुबड़े क्लीनर के चेहरे की तरफ देखती हुई कहती है। क्लीनर सकपका जाता है। लगता है, उसकी चोरी पकड़ी गई है। लड़की सामने वाली लॉरी के पीछे लिखे हर्फों की ओर उंगली से इशारा कर बताती है और खिलखिलाकर जोरों से हँस पड़ती है। एकदम धवल चांदनी की-सी हँसी. पूरा केबिन उस हँसी से गूंज उठता है।

उसे आश्चर्य होता है। पर यह आश्चर्य उसकी हँसी के कारण नहीं, बल्कि यह जानकर कि उसको पढ़ना भी आता है और वह भी तेलुगु नहीं, बल्कि हिंदी. जहाँ तक उसे मालूम है,

उसे पढ़ाई-लिखाई का कोई मौका ही नहीं मिला था।

सागवान की लोड वाली लॉरी को ओवरटेक कर उनकी अपनी लॉरी आगे चली जाती है।

घाटी के पास जंगल में आग लगी हुई है। नीचे गिरे सूखे पत्ते और डालें एसे भभकते हुए जल रहे हैं, मानों वहाँ पर पेट्रोल का छिड़काव किया गया हो। पहाड़ी के शिखर तक घना कोहरा उठ रहा है।

कुछ गिरिजन इतनी तेज धूप में भी बिना चप्पल के नंगे पांव, कंधों पर कावड़ी उठाए सड़क के किनारे-किनारे भागते हुए चल रहे हैं।

जंगल का छोर समाप्त होने के पहले ही वह छोकरी लॉरी रोकने के लिए कहती है।

"गांव तो अभी बहुत दूर है।" ड्राइवर कहता है

"यहीं उतरना है।"

ड्राइवर की समझ में कुछ नहीं आता है। वह लॉरी रोक देता है। पांच रुपये का नोट निकाल वह क्लीनर के हाथ में थमा देती है। आश्चर्य से क्लीनर का मुंह खुला रह जाता है।

केबिन में सबको आश्चर्य में छोड़ वह हिरणी की फुर्ती से नीचे कूदती है। उतरने के पहले वह शरारतीपन से उसकी तरफ देखती है। क्लीनर थैली लेकर उसे देता है।

लॉरी से बूढ़े के न उतरने पर क्लीनर आश्चर्य से पूछता है- "दादा, तुम नई उतरोगे क्या?"

"नई! मेरे को आगे उतरने का है।"

"तो क्या, ये लड़की तुमारे सात नई आई?"

"नई" बूढ़ा सर हिलाता हुआ जवाब देता है।

www.eTelangana.org

न्यूट्रल से गाड़ी गेयर में आती है। ऍक्सीलेटर पर दबाव पड़ता है। लॉरी आगे की तरफ फिर से सरकने लगती है।

"यहाँ पर तो अगल-बगल में कोई गांव भी नई है। खाली बैलगाड़ी के जाने का रास्ता ही दिखलाई दे रहा है। छोकरी को देखो, तो गिरिजन छोकरी जैसा नई लग रही है। फिर यहाँ क्यों उतरी ?" सर खुजलाता हुआ ड्राइवर बड़बड़ाता है।

'मेरे को भी भला क्या पता है ?...... कुछ समझ में ही नहीं आ रहा है।' वह मन ही मन सोचता है।

"थैली तो बोत वजनी था, उस्ताद।" क्लीनर कहता है।

"अरे कपड़े-लत्ते होंगे।" ड्राइवर।

"कपड़े-लत्ते रहे, तो इत्ता वजन नई रहता, उस्ताद" क्लीनर फिर कहता है।

छोकरी उनके लिए एक अनबूझ पहेली-सी बन जाती है। उस शांत केबिन में एक हलचल मचा कर चली गई। चारों अपने-अपने संस्कारों के अनुसार उस लड़की के बारे में कल्पना करने लगते हैं।

लॉरी जंगल पार करती है। एक छोटे से देहात के पास बूढ़ा भी उतर जाता है। केबिन में पहले की तरह फिर से तीनों ही बच जाते हैं।

"साला ये आदिलाबाद जिला बहोत खतरनाक है।..... कुछ समझ में नई आता है।" आपने-आप को रोक न पाकर क्लीनर कहता है।

"तू बकबक मत कर, जिसका काम, वो कर रहा है।" ड्राइवर चिड़चिड़ाता है उस पर।

उस छोटे-से देहात को पार कर लॉरी और कुछ दूर

भागती है और सड़क के किनारे वाले सरदार जी के ढाबे के पास जाकर रुकती है भूखी-प्यासी......कुछ दूरी पर आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र की सीमा वाले चेकपोस्ट के पास तीन चार लॉरी वाले पहले से ही पड़े सुस्ता रहे हैं।

हाथ-मुंह धोकर ड्राइवर और क्लीनर एक खटिये पर आमने-सामने बैठ जाते हैं। उनके बीच में लकड़ी का पाटा है। पास पड़ी लकड़ी की बेंच पर वह भी बैठ जाता है।

"तुमको कुछ चलेगा, सॉब ?" गिलास में ढालता हुआ ड्राइवर पूछता है।

"नहीं-नहीं, आदत नहीं है। तुम लोग होने दो" वह कहता है।

"साला अपन को तो आदत हो गया। जब तक पेट में पेट्रोल नई पड़ता, गाड़ी भागती नई है"-ड्राइवर हँसते हुए कहता है।

"कोई बात नहीं" कहता हुआ वह भी हँसता है।

उसके लिए चावल, आलू-मटर की सब्जी और दाल फ्राई आ जाती है।

ड्राइवर तंदूरी रोटी और चिकन का ऑर्डर देता है। आने तक शायद कुछ समय लगेगा। दूसरी खाटों पर भी इंतजार हो रहा है।

खाना खाकर वह हाथ धो लेता है।

"सॉब, तुम उस नीम के झाड़ के नीचे पड़े खाट पर कुछ देर के लिए कमर सीधा कर लो। हमारा होते ही चलेंगे।" ड्राइवर इशारा करता हुआ कहता है।

भट्ठी पर अंडे की भुर्जी तलने की भीनी-भीनी महक

www.eTelangana.org

आ रही है।

वह जाकर खाट पर बैठ जाता है। सोना उसे अच्छा नहीं लगता है। परंतु बहुत थकावट है। कमर सीधा करने के लिए लेट जाता है। बगल वाली खाट पर एक सरदार ड्राइवर बिना साइलेंसर वाले इंजन की तरह नाक से आवाज निकालते सोया पड़ा है।



घड़ी की तरफ देखता है। दोपहर के दो बज रहे हैं। चंद्रपुर ज्यादा से ज्यादा और कोई दो घंटे का सफर होगा। साढ़े चार या पाँच बजे तक किसी भी हालत में पहुँच जाएगा। और वहाँ से ऑटो लेकर सीधा नगीनाबाग, वकील के घर। घर ढूंढने में शायद ज्यादा समय नहीं लगेगा। नगीना बाग ही न......? वह जेब से कागज निकालकर फिर एक बार पढ़ता है- 'चंद्रकान्त घोड़के' एडवोकेट, सवारी बंगला, नगीनाबाग, चंद्रपुर।

एक के बाद एक खड़ खड़ करती पाँच-छः बैल गाड़ियाँ

गुजर रही हैं सड़क पर। उनमें औरत-मर्द-बच्चे सजधज कर बैठे हुए हैं। तेज धूप के बावजूद अजीब उत्साह है उनमें। एक गाड़ी पर शादी का सफेद जोड़ा पहने और सर पर सेहरा बाँधे दूल्हा बैठा हुआ है।

उसे अपने बेटी की शादी याद आती है। कितने धूमधाम से की थी उसने उसकी शादी। बी.ए. तक पढ़ाया था। किसी चीज की कमी नहीं की उसके लिए। दामाद भी इंजीनियर। कितनी अच्छी जोड़ी थी दोनों की। पर क्या हुआ? साल भर से घर पर आकर बैठी हुई है। और अब दामाद की तरफ से तलाक का नोटिस भी आ गया है।

उसे अचानक गंगा की याद आती है। कितनी तेज-तर्रार लड़की है। कितनी चंट है। और उसकी अपनी बेटी? ......बस, किसी बॉइलर मुर्गी की तरह। ऐसा क्यों बन गया है उसका व्यक्तित्व? बिना सहारे के जी ही नहीं सकती है। उसकी पढ़ाई और उसे मिली सुविधाएँ भी उसे नहीं संभाल सकें। शादी से पहले उसके लिए कितनी तकलीफ उठानी पड़ी थी। शादी के बाद भी अब वह उस पर ही आश्रित है।

"सरदार जी, चिकन में मजा नई आया!" ड्राइवर की आवाज कानों से टकराती है। खाट पर ड्राइवर और क्लीनर दोनों खाने में जुटे हुए हैं।

पर यह छोकरी गंगा यहाँ जंगल में अचानक कैसे टपक पड़ी? कहां से आ रही है? कहां जा रही है? अपना नाम जमुना क्यों बताई? मां का नाम भी लक्ष्मी कह कर गलत ही बताई? आखिर यह नाटक करने की क्या जरूरत थी? शादी हो गई? कब हुई? और फिर यह छोकरी पढ़ना-लिखना कब सीखी? कैसे

www.eTelangana.org

सींखी? गंगा से संबोधित कई प्रश्न गरम लू की तरह उसके दिमाग में सांय-सांय करने लगते हैं।

कुछ पूछना चाहा, तो छोकरी मौका ही नहीं दे रही थी। खैर छोड़ो गंगा है भी, तो उसे क्या करना है? नहीं हैं, तो भी उसे क्या करना है। बेकार में भला क्यों माथा-पच्ची...... पर वो गंगा ही थी।

पत्तों के बीच से छन-छन कर पड़ती सूरज की रोशनी से उसकी आंखे चौंधियाने लगी थी। थोड़ा सरककर लेट जाता है।

सड़क के किनारे इस तरह लेटना उसे अजीब-सा लगता है। एक तरह का अपरिचित मौन। इस मौन के बीच कभी-कभी भूली-बिसरी यादें।

...... छः-सात साल की दुबली लड़की। उसकी गोद में एक साल का बच्चा। उसे नीचे उतारकर खिलाने लगती है। बच्चा भी किलकारियाँ भरता हुआ एक-एक कदम उसकी तरफ बढ़ाता चला आ रहा है।

"तेरे को क्यों रखे है? लड़के को उठाने के वास्ते या उतारने के वास्ते? चल, उठा।" एक मोटी औरत आकर उसे डांटती है।

वह लड़की आतंकित-सी होकर उस थुल-थुल बदन वाले बच्चे को फिर से गोदी में उठा लेती है।

जलकर खाक हो जाने वाली तंदूरी रोटी का बास-सा कुछ भर जाता है उसके दिमाग में। गंगा यानी दो हजार रुपयों में गिरवी रखी छोकरी। उसकी मां मल्लम्मा, वारंगल में जीजाजी के भाई के घर की नौकरानी। जीजाजी का भाई यानी रईस आदमी। बहुत पैसों वाला, पेशे से वकील। अचानक नौकरानी का बीमार

पड़ना, दवा-दारू, इलाज और अस्पताल का खर्चा... दो हजार का कर्ज...। कर्ज के बदले गंगा गिरवी रख दी गई। गंगा को तनख्वाह नहीं, कर्ज पर सूद नहीं।

रेत ढोने वाली एक लोकल ट्रक आकर सड़क के किनारे रुकती है। किसी भयभीत इन्सान के दिल की तरह उसका इंजन धक्-धक् कर रहा है।

जब भी वह अपने जीजाजी के घर जाता, गंगा जरूर दिखलाई देती थी। वह उनके भाई के घर का एक सदस्य बन चुकी थी। छोकरा चार-पांच साल का हो गया था। फिर भी अपनी कमजोर टांगो के कारण चलने-फिरने मे असमर्थ था। गंगा ही उसकी बैसाखी थी। उसका हर काम गंगा को ही करना पड़ता था। मां-बाप, सखी, दासी सब कुछ गंगा ही थी। उस अपाहिज छोकरे की।

इस बीच बहुत दिनों तक उधर जाना नहीं हुआ। आठ-दस महीने पहले गया था तो, गंगा से मुलाकात नहीं हुई। कलश में पानी भरकर लाती उसकी मां मिली थी सीढ़ियों पर..... गंगा के बारे में पूछा, तो बात बदल दी थी। अपनी ही परेशानी में वह भी चला आया था बिना इस बात पर जोर दिए। ...और फिर इस जंगल में गंगा का अचानक टपक पड़ना..... आकाश में बिजली की तरह एक क्षण के लिए कौंधकर गायब हो गई थी, उसकेदिमाग में कई सवाल उठाते हुए।

धक्-धक् करती रेतगाड़ी धक्-धक् करती ही चली गई।

खाट पर धूप पड़ने लगी है। दीर्घ श्वास लेकर अपने मन में उठे प्रश्नों के तूफान को दूर ठेलने के लिए वह उठकर ढाबे के शेड में चला जाता है और जग का पानी कंठ में गटगट उंडेलता है।

www.eTelangana.org

ड्राइवर और क्लीनर अपना भोजन समाप्त कर के जाने की तैयारी में हैं।

तेजी से एक जीप आकर ढ़ाबे के सामने रुकती है। उसमें से पांच पुलिस वाले दन-दन कर बाहर कूदते हैं। वहां का सारा माहौल बदल जाता है। वे लोग वहां खड़ी लॉरियों को घेरकर केबिन की तलाशी लेने लगते हैं। उनके हाथों में तनी हुई बंदूकों को देखकर सब लोग अपनी बातें बंद कर आश्चर्य से देखने लगते हैं।

होटल में बैठे ड्राइवर और क्लीनर सब अपनी-अपनी लॉरियों के पास आकर खड़े हो जाते हैं।

"वो छोकरी कहां है?" एक पुलिस वाला लाल पगड़ी बांधे एक सिख ड्राइवर से, डपटकर पूछता है।

"कौन-सी कुड़ी सॉब?" वह कुछ न समझ, डर और आश्चर्य से उल्टा सवाल करता है।

"वोई हरी साड़ी वाली? हाथ में थैली है। तेरे ट्रक में ही बैठी थी न?"..... पिस्तौल पकड़ा पुलिस इंस्पेक्टर कहता है।

"एहोजी, कुड़ी कोई नई बैठी मेरे ट्रक विच।" वह डरता-डरता जवाब देता है।

"तो तुम सीधे तरीके से नहीं बताओगे?" अंदर डालकर हड्डी-पसली एक कर देंगे, तो पता चलेगा। इसको जीप में चढ़ाव"..... इंस्पेक्टर कड़क कर कहता है।

"कसम वाहे गुरुजी। मैने नई पता सॉब।" सिख ड्राइवर अपनी पगड़ी पर हाथ रखते हुए कहता है। तब तक सब लॉरियों के साथ इनकी लॉरी के कैबिन की भी तलाशी ले पुलिस वाले नीचे उतरते हैं।

उससे, लॉरी ड्राइवर से और कुबड़े क्लीनर से भी, कुरेद-कुरेदकर पूछताछ करते हैं। 'इस तरह की, किसी भी छोकरी को ट्रक में नहीं बैठाया है।' कहकर ड्राइवर भी सबकी तरह ही जवाब देता है।

पुलिस वाले जीप के पास आकर रुकते हैं।

"पक्का इन्फरमेशन था, पर छोकरी पलक झपकने की देरी में ही न जाने कहां चंपत हो गई।" एक पुलिस वाला फुसफुसाता है। जीप जैसे आई थी, वैसे ही चली जाती है।

"चलो सॉब, चलते हैं।" ड्राइवर कहता है।

दोनों केबिन में चढ़कर बैठ जाते हैं। गाड़ी के स्टार्ट होते ही कुबड़ा क्लीनर भी लंगूर की तरह लपककर चढ़ जाता है।

"साला, एक बड़ा मुसीबत टल गया।" गेयर बदलकर एक्सीलेटर पर दबाव डालते हुए ड्राइवर कहता है।

डांबर की काली सड़क पर लॉरी पहले की तरह ही फिर से भाग रही थी।

❀ ❀ ❀

'हंस' मई 1997

www.eTelangana.org

पत्र मित्र



प्रिय पत्र-मित्र

आज मैं तुम्हें कितने अंतराल के बाद पत्र लिख रही हूँ। मुझे मालूम है कि इसे पाने के लिए अब तुम इस संसार में नहीं रहे। फिर भी लिख रही हूँ। पत्र क्या लिख रही हूँ बस अपनी डायरी के पन्ने भर रही हूँ। बस एक पागलपन है। यह पागलपन नहीं तो भला और क्या है ?..... पर तुम्हीं बताओ भला मैं कर भी क्या सकती हूँ ? दिल की वेदना को इस तरह कागज पर उतारे बिना लगता है मुझे चैन नहीं मिलेगा।.....दिन-रात, सोते-जागते, उठते-बैठते बस तुम्हारी याद ही आती रहती है। तुम्हारे लिखे एक-एक पत्र को कई-कई बार पढ़ चुकी हूँ। तुम्हारा ऐसा कोई पत्र न होगा जिसे पढ़कर रोई न हूँ। जिस तरह तुम इस संसार से अदृश्य हो गये उसी तरह मेरे आँसुओं से तुम्हारे पत्रों के कई हर्फ अदृश्य होते चले गये हैं।

हाँ तो हमारी पहली मुलाकात कहाँ हुई थी ? .....मुलाकात यानी पत्र द्वारा मुलाकात। .....हाँ मुझे सब कुछ याद है। .....उस

समय मैं यौवन की दहलीज पर कदम रख रही थी। न जाने क्या-क्या सपने देखा करती थी। दिल हमेशा बेचैन सा रहता था। अजीब-अजीब से भाव दिल में उठते थे। .....चाहती थी काश ! इन भावों को समझने वाला कोई मेरा अपना होता। मेरी इस बेचैनी को समझता। सब लड़कियों की तरह मुझे भी किसी ब्वॉय फ्रेण्ड की तलाश थी। पर यह साहस मुझमें न था। किसी लड़के की तरफ आँख उठाकर भी नहीं देख सकती थी फिर भला ब्वॉय फ्रेण्ड कैसे बनाती ? दिल में उठते भावनाओं के गुबार को दिल में ही मसोसकर रखती। दिन बीतते गये। इसी के साथ बेचैनी भी बढ़ती गई। .....मानसिक उलझनें बढ़ती गईं। .....और फिर एक दिन मैने पत्र-मित्र से संबंधित एक पत्रिका में तुम्हारा विज्ञापन देखा था। तुम्हारे विज्ञापन ने मुझे अनायास ही आकर्षित कर लिया था। धड़कते दिल से तुम्हें पत्र लिखा था। केवल चार-छः पंक्तियों का पत्र..... । पर क्या तुम्हें मालूम है कि इन चार-छः पंक्तियों को लिखने के लिए मुझे कितना पापड़ बेलना पड़ा था। कितने तनाव से गुजरना पड़ा था ?..... कितना पेपर बरबाद करना पड़ा था ? कितनी योजना बनाकर किस जतन से पत्र लिखा था। .....और किस तरह सबकी नजर बचाकर मैने पत्र लेटर बॉक्स में डाला था ? डालने के पहले इधर-उधर अच्छी तरह से देख लिया था कि कोई देख तो नहीं रहा है। पर क्या इसके बाद भी नार्मल हो सकी थी ? पत्र डालने के बाद भी वही हालत थी। रोज तुम्हारे जवाब का इन्तजार करने लगी थी। सोचने लगी थी न जाने तुम किस तरह के छोकरे हो ? मेरे पत्र को तुम पर किस तरह की प्रतिक्रिया हुई होगी ?..... तुम मुझे जवाब देने के काबिल भी समझोगे या नहीं ?..... कहीं पत्र मिलते ही वेस्ट पेपर के बॉस्केट के हवाले तो नहीं कर

www.eTelangana.org

दोगे ?..... मेरे लिये तो तुम अनजान ठहरे, कहीं तुम मेरे पत्र का दुरुपयोग तो नहीं करोगे ? और अगर घर वालों को यह बात मालूम पड़ गई तो..... ?

इसी तनाव में दिन बीतते रहे। जब भी पोस्टमैन कॉलेज में आता दिल धड़कने लगता। धीरे-धीरे पंद्रह दिन बीत गये। तुम्हारा कोई पत्र न मिला। सोचा मुसीबत खत्म हुई। तुम्हारे पत्र का इंतजार करना बन्द कर दिया। मैने अपने कॉलेज का पता दिया था। घर का पता तो दे नहीं सकती थी।... और फिर तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारा यह पत्र किसी के द्वारा मेरे नाम लिखा गया मेरे जीवन का पहला पत्र था। सहपाठिनियों ने उत्सुकता से पूछा था 'किसका पत्र है ?'

'मेरे एक फ्रेंड का' मैने जवाब दिया था।

'गर्ल या ब्वॉय ?' उसके इस प्रश्न से लगा मेरी चोरी पकड़ी गई पर तभी दूसरी सहपाठिनी ने कहा - 'अरे! ब्वाय फ्रेण्ड बनाने की इसमें हिम्मत ही कहाँ है ?' और एक जोरों का कहकहा।

मैनें इत्मिनान की साँस ली। पत्र को वहाँ पर पढ़ने का साहस ही नहीं रहा। भेद खुल जाने के डर से किताबों के बीच दबाकर रख दिया। तुमने क्या लिखा है यह जानने की तीव्र उत्कण्ठ दिल में थी। जब तक क्लॉस में रही सारा ध्यान तुम्हारे पत्र पर ही केन्द्रित रहा। लेक्चर का एक शब्द भी दिमाग में न बैठा पाई। और जब अपने-आपको रोक नहीं सकी थी तब मालूम है मैने क्या किया था ? बताते हुए बहुत ही भद्दा लगता है, शर्म सी आती है। कॉलेज के वॉथरूम में जाकर अन्दर से चिटकनी लगा लिया था और साँस रोककर तुम्हारा पत्र पढ़ डाला था। एक बार, दो बार नहीं, न जाने कितनी बार। मैं पहले ही बता चुकी हूँ कि यह मेरे लिये, मेरे जीवन में किसी का लिखा पहला पत्र था। .....आज

अपनी उस समय की अवस्था के बारे में सोचती हूँ तो लाज से गढ़ सी जाती हूँ। अपने आप पर जोरों से हँसी भी आती है। .....बॉथरूम से निकली तो मेरी एक सहेली जो न जाने कब से इन्तजार कर रही थी बोली - 'क्या री! अन्दर इतनी देर तक क्या कर रही थी ?' मैं 'कुछ नहीं' 'कुछ नहीं' कहती लड़खड़ा गई थी और उससे आँखे कतराकर जल्दी-जल्दी क्लॉस रूम में चली गई थी।

कितना सुन्दर पत्र था तुम्हारा। साफ सुथरा। बिना किसी लाग-लपेट के तुमने अपनी बातें लिखी थी। कितना प्रभावित किया था तुम्हारे पत्र ने मुझे.....।

और फिर इसके बाद पत्र लिखने का दोनों ओर से एक लम्बा सिलसिला आरंभ हो गया था। तुम्हारे हर पत्र का बेचैनी से इन्तजार करती, धड़कते दिल से पढ़ती .....अपना हर दुःख-दर्द, अपनी हर समस्या तुम्हें लिखती। तुम मेरी हर समस्या का निदान लिखते, मेरे दुःख-दर्द में हिस्सा लेते। तुम भी अपनी समस्या लिखते। उसका निदान मुझसे पूछते। दोनों एक-दूसरे को देखे बिना ही एक दूसरे के लिए खुली किताब थे। पत्रों में हमें एक-दूसरे की दिल की धड़कन महसूस होती। दोनों एक-दूसरे के आत्मीय बन चुके थे। दोनों का रिश्ता न तो भाई-बहन का था और न ही दो प्रेमियों का। यह एक लड़के और एक लड़की का एक नया ही रिश्ता था और वह रिश्ता था केवल दोस्ती का। दोनों जिगरी दोस्त। और यह रिश्ता तुमने ही मुझे दिया था। तुम्हीं ने मुझे मार्गदर्शन दिया था। नहीं तो यौवन की जिस दहलीज पर मैने तुम्हारी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया था वह कभी भी डगमगा सकता था। मैं अपने रास्ते से हट सकती थी। लीक से परे हो सकती थी। मुझमें अच्छे-बुरे की कोई समझ न थी। कहीं पर भी

www.eTelangana.org

फिसल सकती थी। कोई भी किसी तरह का फायदा मुझसे आसानी से उठा सकता था। पर यह तुम थे जिसने हमेशा मेरे कदमों को डगमगाने से बचाया। मुझे सपनों की दुनियाँ से यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़ा किया। न तो आज तक तुम मुझे देख सके और न ही मैं तुम्हें। और भविष्य में भी देखने का कोई मौका ही नहीं रहा क्योंकि तुम अब इस संसार में नहीं रहे। पर तुम्हारी कोई भी ऐसी समस्या न थी जिसका पता मुझे न रहा हो।

दोस्त तुम्हें याद होगा, एक बार मैंने तुम्हें अपना फोटो भेजने का अनुरोध किया था। मालूम है तुमने क्या लिखा था? तुमने मेरा अनुरोध निर्दयता से ठुकरा दिया था और लिखा था..... 'हमारी दोस्ती में शारीरिक आकर्षण बिल्कुल नहीं आना चाहिए। मान लो मैं तुम्हे फोटो भेजता हूँ। अगर फोटो में सुन्दर लगता हूँ तो जरूर तुम मेरी ओर ज्यादा आकर्षित होओगी। इसके विपरीत अगर उतना ही कुरूप लगूँ तो हमारी दोस्ती में दरार सी पड़ने लगेगी। इसी तरह तुम्हारा फोटो देखकर मैं भी शारीरिक आकर्षण के अनुसार अपनी राय बना सकता हूँ। .....और यह बात हमारी ईमानदार दोस्ती को जरूर प्रभावित करेगी। और फिर हमारे पत्र-मित्रता का मकसद ही समाप्त हो जाएगा। .....क्या ही अच्छा हो कि हम केवल एक-दूसरे को विचारों से जाने और इसी आधार पर हमारी दोस्ती कायम रहे। और यही दोस्ती शाश्वत रह सकती है। यही दोस्ती ईमानदार हो सकती है। शारीरिक आकर्षण पर टिकी दोस्ती तो क्षण-भंगूर ही रहेगी। यही नहीं तुमने अपनी दोस्ती को हमेशा के लिए कायम रखने के लिये भूलकर भी मुझसे अपना स्वयं का भी फोटो न भेजने का अनुरोध किया था।

कितना उच्च विचार था तुम्हारा दोस्ती के सम्बन्ध में।

कितनी ईमानदार थी तुम्हारी दोस्ती। अगर तुम्हारी जगह और कोई होता तो केवल एक-दो पत्र के बाद मुझसे अपना फोटो भेजने का अनुरोध करता। फिर मुझसे व्यक्तिगत तौर पर मिलने का प्रयत्न करता। और इसमें अगर कामयाब न होता तो शायद पत्र मित्रता बन्द कर देता।

पर तुम इन सब से अलग थे। तुमने मुझसे मिलने का कभी प्रयत्न ही नहीं किया और न ही मिलने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया। यही कारण है कि हमारी दोस्ती अंत तक बनी रही। यही कारण है कि आज तुम नहीं रहे पर तुम्हारी याद में आँसू बहाती हूँ। तुम्हें खोकर लगता है मानों जीवन की सबसे कीमति चीज खो दी है। जीवन सूना-सूना सा हो गया है।

तुम्हारे जीवन में कैसे-कैसे बदलाव आये, तुम्हारे विचारों में क्रमशः किस तरह के परिवर्तन आये इन सबसे मैं वाकिफ हूँ। तुमने कभी कुछ नहीं छिपाया। .....तुममें कितनी गजब की देश-भक्ति थी। देशवासियों की सेवा की कितनी उदात्त भावना थी तुममें। इसी भावना के तहत तुमने कांग्रेस में काम किया। नेताओं के लम्बे चौड़े भाषणों और आश्वासनों के प्रभाव में आकर सोचा था कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी पार्टी है जो देश को उन्नति के मार्ग पर ले जा सकती है। तुम उसके एक सक्रिय कार्यकर्ता बन गये। पर जल्दी ही तुम्हारा मोह भंग हो गया। उसके कट्टर विरोधी बन गये। इमरजेंसी का विरोध किया। तुम भी उसके शिकार हुए। जेल में ठूंस दिये गये। कठोर यातनाओं से गुजरना पड़ा। इमरजेंसी के बाद जनता पार्टी का जोर-शोर से समर्थन करने लगे। पर तुरन्त ही तुम्हें मालूम हो गया कि चाहे जनता हो अथवा कांग्रेस अथवा कम्युनिस्ट कोई भी पार्टी देश को आगे नहीं बढ़ा सकती है। सब पार्टी में

www.eTelangana.org

स्वार्थ लोलुप लोग बैठे हुए हैं। सब जनता की सेवा के नाम पर अपनी सेवा में लगे हुए हैं। कोई भी देश जन-चेतना के बिना आगे नहीं बढ़ सकता है। जब तक जनता अपने हक को, अधिकारों को समझकर उसके लिए स्वयं संघर्ष करने पर उतारू नहीं होती तब तक कोई भी देश, कोई भी समाज सुधर नहीं सकता।



.....और फिर अगले छः महीने तक आखिर क्या किया जाय इसी विचार में उलझे रहे। तुम्हारे पत्रों से लगता है ये दिन शायद तुम्हारी जिन्दगी के सबसे तनावग्रस्त दिन थे। .....निश्चय-अनिश्चय, आशा-निराशा के बीच झूलते रहे। इसी बीच तुमने कई गिरिजन क्षेत्रों का दौरा किया था। सेठ, साहुकारों और जमीनदारों द्वारा गिरिजनों पर होते शोषण और अन्याय को देखा। सरकारी कुतंत्र के उन पर कसते शिकंजों को पहचाना। पुलिस और वन-विभाग द्वारा उन पर होते जुल्मों को देखा। इन सबकी मिली-जुली

प्रतिक्रिया ने तुममें गिरिजनों के बीच काम करने की भावना को जागृत किया। एक पत्र में तुमने लिखा था 'आज देश में गिरिजनों का, आदिवासियों का जो हर जगह शोषण हो रहा है, उन पर जो अत्याचार, अन्याय हो रहा है, उन्हें जिस तरह अपनी जमीन से खदेड़ा जा रहा है, उन्हें जिस तरह जंगल माँ की गोद से दूर किया जा रहा है, इन सबसे उन्हें बचाने का एक ही रास्ता है।-उन्हें शिक्षित करना, उनमें चेतना लाना, उन पर होते जुल्मों से उन्हें अवगत कराना और उन्हें संगठित कर अपने अधिकारों के लिये लड़ना सिखाना.....।

तुम किस रास्ते पर बढ़ना चाह रहे थे इसकी भनक थोड़ी-बहुत तुम्हारे पत्र से मिल गई थी। मैं तुममें एकाएक आये इस परिवर्तन से काँप सी गई थी। तुम्हें कैसे समझाऊँ कुछ न सूझा था। जिस ओर कदम बढ़ाने का तुमने संकेत दिया था उसका अंजाम क्या हो सकता है इसकी थोड़ी बहुत समझ मुझमें थी। मैने सारी बातें अपनी तरफ से समझाते हुए लिखा था - 'जो तुम कदम उठाने जा रहे हो क्या उसके खतरे से अवगत हो.....?' मैने तुम्हें चेतावनी दी थी। पर तुम नहीं माने। लगता है तुम तो खतरों से खेलने के लिये ही पैदा हुए थे। .....आदिवासियों के बीच कार्य करने लगे। जब ऍक्सपोज हो गये तो पुलिस से बचने के लिए भूमिगत हो गये।

.....और भूमिगत होने के बाद तुम्हारा एक पत्र मिला। उसमें तुमने लिखा था - 'अब तुमसे मेरा पत्र व्यवहार रखना तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है। मै नहीं चाहता कि मेरी वजह से तुम किसी तरह की मुसीबत में फंसों। पर याद रखो तुम्हारे प्रति जो दोस्ती की भावना मेरे दिल में है वह हमेशा के लिए रहेगी। आज

www.eTelangana.org

तक तुम मेरी सच्ची दोस्त रही हो। सच्चे और ईमानदार दोस्त विरले ही मिलते हैं। और इस मामले में तुम्हें पाकर सचमुच अपने आपको भाग्यशाली समझता हूँ। हमारी यह दोस्ती हमेशा के लिए रहेगी। पर पत्र द्वारा तुमसे सम्बन्ध तोड़ने का मुझे दुःख है। आशा है क्षमा करोगी.... ।'

दोस्ती के प्रति तुम्हारे दिल में कितनी उच्च भावना थी। दोस्त को थोड़ा भी परेशानी में डालना तुम्हे पसंद न था।

....तुम्हारा पत्र पाकर मैं रो पड़ी थी। लगा कोई मेरा अपना मुझे बीच मंझधार में छोड़कर दूर चला जा रहा है। ....मैं तुम्हें पुकारना चाहती थी, पास बुलाना चाहती थी पर तब तक तुम अदृश्य हो चुके थे। जंगल माँ के विशाल गर्भ में तुमने अपने-आपको छिपा लिया था। ....तुम्हारे पत्रों के बिना खोया-खोया महसूस करती रही। तुम कहाँ हो, क्या कर रहे हो यही विचार दिल में आता। तुम्हें पत्र लिखने के लिए बेचैन हो उठती। पर तुम्हारा पता कहाँ था? भूमिगत जो थे। कई दिनों तक यह आश लगाये बैठी रही कि शायद भूले-भटके तुम्हारा कोई पत्र मिल जाये। और दिल में यह भी दृढ निश्चय कर लिया था कि तुमने न मिलने की जो लक्ष्मण रेखा खींची है उसे जरूर पार कर जाऊंगी। तुम्हारा पता मिले तो, तुम लाख कोशिश करो तुम्हें मिले बिना न रहूँगी। अपने आप को लगातार कोसती रही कि अभी तक तुमसे मिली क्यों नहीं? क्यों मैंने तुम्हारी बातों पर अमल किया? दिल में यह कामना करने लगी कि तुम पर परिस्थितियों की ऐसी मार पड़े कि तुम वापस अपने पुराने जीवन में आ जाओ। पर तुमने जीवन से पलायन सीखा ही न था। जो रास्ता तुम्हें ठीक लगा.... जिस रास्ते पर

तुम्हारे कदम बढ़ गये उस रास्ते पर बढ़ते ही चले गये। पीछे हटने का नाम ही न लिया।

और फिर उस पत्र के बाद अन्तराल - लम्बा अन्तराल। पूरे दस साल का अन्तराल। इस बीच जीवन में कितनी ही घटनाओं ने अपना स्थान बना लिया। कितना परिवर्तन आ गया। मां बाप चल बसे.... पढ़ाई छूट गई .... शादी.... शादी के बाद गृहस्थी ....बच्चे। अगर इन सब पर पत्र लिखने बैठी तो पूरी एक महाभारत की रचना हो जायेगी।

मुझे एक अच्छा कमाता खाता पति मिला। घर में स्कूटर है। फ्रिज है, सोफा है, सब है। हंसते खेलते बच्चे हैं। फिर भी मैं और वह दोनों बस एडजस्टमेंट में जी रहे हैं। वह भी शायद इसलिये कि लोगों की नजरों में हम पति-पत्नी हैं। भला हम दोनों के सम्बन्धों के बारे में क्या बतायें। ....वैसे वे बहुत ब्राड भी हैं। शादी के बाद तुम्हारी दोस्ती का जिक्र किया था उनसे । तुम्हारा पत्र भी पढ़ने भी को दिया था उन्हें। पढ़कर उन्होंने कहा था - 'सचमुच! तुम बहुत भाग्यशाली हो। जीवन में ऐसे सच्चे ईमानदार दोस्त विरले ही मिलते हैं ।....'

शादी के बाद लगता है मेरा पूरा संसार घर गृहस्थी में ही बंध कर रह गया। मैं गृहस्थी में अपने आपको बिजी रखती हूँ और वे आफिस में।

इन दस वर्षो में धीरे धीरे तुम्हारी याद कम होती गई और अब तो तुम्हें भूल ही गयी थी, अगर तुम्हारा वो पत्र न मिला होता तो। दो महीने पहले तुम्हारा पत्र मिला था। इतने सालों बाद तुम्हारा पत्र पाकर आश्चर्य की सीमा न रही और खुशी के मारे पागल सी

www.eTelangana.org

हो गई। ....यह खत पाकर मेरी हालत बिल्कुल वैसी ही हो गयी थी जैसी की कॉलेज जीवन में तुम्हारा पत्र पाकर हुआ था। ....तुम्हारी याद ताजा हो गई। तुम कैसे हो? कहाँ हो? यह जानने की उत्सुकता से पत्र खोलकर एक सांस में ही पढ़ गई। तुमने लिखा था .... 'शायद भूली नहीं होगी। बहुत समय बाद तुम्हें पत्र लिख रहा हूँ। माफी चाहता हूँ। तुम्हें खुशी होगी यह जानकर कि अभी मैं जिन्दा हूँ। तुम कैसी हो, तुम्हारे जीवन में क्या-क्या परिवर्तन आया है यह भी मुझे मालूम नहीं है। दस वर्षों बाद लिखा यह पत्र तुम्हें मिलेगा यह भी संदेह है। फिर भी लिख रहा हूँ। ....आदिवासियों के बीच आकर लगता है मेरा जीवन सार्थक हो गया है। यहाँ पर जिंदगी और मौत साथ-साथ चलते हैं। मौत साये की तरह पीछा करती रहती है। पिछले सप्ताह ही पुलिस के साथ मुठभेड़ में हमारे दल का एक कॉमरेड चल बसा, मैं भी बाल-बाल बचा। अब भी मेरा कोई भरोसा नहीं है। जाने कब चला जाऊँ। इसलिये तुम्हें पत्र लिखने से अपने आपको रोक नहीं पाया। तुम्हारा भी पत्र पाने की इच्छा है। तुम कैसी हो? क्या कर रही हो? जिंदगी कैसी गुजर रही है? यह सब जानने की तीव्र उत्कंठा है, पर मजबूर हूँ कि अपना पता ठिकाना तुम्हें नहीं दे पा रहा हूँ। शायद यह मेरा अन्तिम पत्र हो....इसलिये अलविदा.... अलविदा.... ।'

और यह पत्र तुमने मेरे घर के पते पर लिखा था। जब तक कॉलेज में पढ़ती थी अपन दोनों का पत्र-व्यवहार कॉलेज के पते पर ही होता था। फिर भी मैने एक पत्र में तुम्हें अपने घर का पता दे दिया था। यह पत्र वहीं से रीडायरेक्ट हो कर मुझ तक पहुँचा था।

....और सचमुच यह तुम्हारा लिखा अन्तिम पत्र था। तुम

अलविदा कहकर मुझे छोड़कर चले गये। मुठभेड़ में मारे जाने की खबर तुम्हारी माँ ने पत्र लिखवाकर मुझे दी थी। तुमने अपनी माँ से कहा था कि कभी अगर तुम्हें कुछ हो जाये तो इसकी सूचना जरूर मुझे दे। इसी के तहत तुम्हारी अनपढ़ बूढी माँ ने किसी से पत्र लिखवाकर यह दु:खद समाचार मुझे दिया था।

पत्र पाकर कितना फूट-फूट कर रोई थी। अब तक मैंने अपने आपको रोक रखा था। पर अब रोक नहीं सकी। मैंने तुम्हारे घर जाने का निश्चय किया। पति ने बहुत समझाया - 'भला वहाँ जाकर क्या करोगी? जिसके लिए तू जा रही है वह तो अब इस संसार में नहीं है।' पर मैं न मानी बोली - 'कम-से-कम मैं एक बार उस पवित्र धरती को देखना चाहती हूँ जहाँ वह पैदा हुआ था, जहाँ की धूल में लोटकर बड़ा हुआ था। उस मातृमूर्ति को देखना चाहती हूँ जिसने उसे पैदा किया है। जीते जी तो उसे नहीं देख सकी.... पर उसका फोटो वगैरह तो होगा उसे ही देखकर संतोष कर लूंगी।'

और पति के बहुत मना करने के बावजूद मैं तुम्हारी अनजान जन्मभूमि की तरफ चल पड़ी, अकेले ही। दो दिन की ट्रेन और चार घंटे की बस की यात्रा के बाद तुम्हारे गाँव पहुँची। छोटा सा सुन्दर सा गाँव तुम्हारा। मुझे देखकर तुम्हारी बूढ़ी माँ और बूढ़े पिता आश्चर्य से मुँह फाड़े रह गये थे। किसी तरह मैने अपना परिचय दिया। दोनों मुझसे लिपटकर फूट-फूट कर रो पड़े थे। मुझे खाट पर बिठाया और वे स्वयं नीचे बैठ गये। पर मैं उनके बहुत मना करने के बावजूद भी उनके साथ नीचे ही बैठी। दोनों ने तुम्हारे बारे में जाने कितनी बातें बताईं। जहाँ एक ओर तुम्हें खोने

www.eTelangana.org

का उन्हे दुःख था वहीं दूसरी ओर मानव जाति के उद्धार के लिए किये गये तुम्हारे त्याग पर भी उन्हें गर्व था। मैं तुम्हारा फोटो देखने को ललायित थी। मैंने उनसे फोटो पूछा। तुम्हारे बूढ़े पिता कुछ क्षणों तक तो शून्य में निहारते रहे सूनी आंखो से और फिर उठकर अन्दर चले गये। मैं समझी तुम्हारा कोई फोटो लाकर देंगे। मैं तुम्हारी सूरत देखने के लिए दिल थाम कर बैठी रही। तुम्हारी सूरत कैसी होगी, तुम्हारे नाक-नक्श कैसे होंगे कह कर मन ही मन कल्पना करने लगी।

....कुछ देर बाद पिताजी लौटे तो उनके हाथ में एक बहुत ही पुराना पत्र था जिसको देखने से लगता था वह बहुत ही जतन के साथ रखा गया था। उन्होंने उसे मेरी हथेली में रख दिया। मैंने आश्चर्य से उसकी तहों को खोलकर देखा। यह तुम्हारा लिखा पत्र था पर तुम्हारी अपनी मातृभाषा में। मैं तुम्हारी मातृभाषा नहीं जानती हूँ। मुझे देखकर तुम्हारा ही एक मित्र वहाँ आ गया था। उसने ही पढ़कर उस पत्र के बारे में बताया। तुमने लिखा था-'पिताजी मैं घर छोड़कर जा रहा हूँ। बिना बताये जा रहा हूँ इसका मुझे दुःख है। मुझे मालूम है कि अगर बता दूँ तो आप और माँ मुझे कदापि नहीं जाने देंगे। आपने जिस उद्देश्य से मुझे पाल-पोस कर, पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया, मैं उस उद्देश्य की पूर्ति न कर सका। एकलौता बेटा होते हुए भी नौकरी बगैरह करके आपके बुढ़ापे का सहारा नहीं बन सका इसी बात का मुझे दुःख है। ....आप मेरी विचारधारा से अवगत हैं। आपको गर्व होना चाहिए कि आपका बेटा शोषण मुक्त समाज की स्थापना के लिए क्रांतिकारियों के दल में मिल रहा है....मैं जिस रास्ते पर जा रहा हूँ उस रास्ते से वापस लौटना अब कदापि संभव नहीं है.... इसलिये मेरी किसी तरह की

खोज खबर लेने से कोई फायदा नहीं होगा।'

'घर में जो भी मेरा फोटो वगैरह था वह सब मैंने नष्ट कर दिया है। और अगर कोई मिले तो उसे भी फाड़कर फेंक दें। माँ को मेरा प्रणाम कहना और उन्हें धैर्य देना।'

तुम्हारा लाड़ला बेटा....।

दस वर्ष पहले लिखे इस पत्र को देखकर मेरी आँखें डबडबा आईं। तुम्हारे पिता इस पत्र को ले सूनी आँखों से इस तरह निहारते रहे मानों वे अपने दिवंगत बेटे की तस्वीर देख रहे हों। यही पत्र उनके लिए तुम्हारा फोटो था। और तुम्हारी सबसे कीमती अमानत।

जब मैं उनसे विदा होकर लौट रही थी तो उन्होने मुझे गले से लगा लिया था। .....मैंने उनके पाँव छुए और भारी मन से लौट पड़ी थी।

जब तक ट्रेन में सफर करती रही बस तुम ही मेरी यादों में समाये रहे। सफर बहुत ही बोझिल सा हो गया था। कौन सा स्टेशन आया है, मैं कहाँ पहुँच गई, इसका मुझे कोई बोध ही नहीं रहा। बस तुम ही पूरी तरह मेरे व्यक्तित्व पर छाये रहे। तुमने मुझे जीवन की एक नई परिभाषा दी।

सोचती हूँ तुम्हारा जीवन कितना सुन्दर था। कितना विशाल था। तुमने जीवन को कितने सुन्दर ढंग से जिया। पूरी तरह जिया। अपने लिए नही, लोगों के लिए जिया। संपूर्ण मानव जाति के उद्धार के लिए जिया। तुम्हारे जीवन से जब अपने जीवन की तुलना करती हूँ तो अपने आप को कितना तुच्छ पाती हूँ। ....यह भी भला कोई जिन्दगी है। चहर दीवारी में घिरी हुई। घर, पति और बच्चे

www.eTelangana.org

बस। यही सारा संसार है।.... हम पैदा होते हैं, कीड़े-मकाड़ों की तरह जीते हैं और फिर चले जाते हैं... दोस्त तुमने मेरी आँखों को नई रोशनी दी।..... जीने का नया अंदाज सिखाया।.....

हे मेरे देस्त ! मैं तुझे नहीं देख सकी। तुम्हारा फोटो तक देखने का नसीब मुझे प्राप्त नहीं हुआ। पर जब भी किसी को अन्याय के विरुद्ध, अत्याचार के विरुद्ध आदिवासियों के लिये, गिरिजनों के लिये, जनता के लिये लड़ता हुआ देखती हूँ उसमें तुम्हारा चेहरा ही दिखलाई देता है..... ।

कॉमरेड! अलविदा .... अलविदा..... ।

तुम्हारी पत्र-मित्र

❀ ❀ ❀

स्व. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना स्मारक अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता में पुरस्कृत और दूर्वादल जु. सिंत. 89 अंक में प्रकाशित।

डुक्कर



बेसुध सी लेटी पड़ी है, जमीन पर वह।

मुंह खुला हुआ है और ओंठों के कोर से एक पतली धार सी बह रही है। मंद स्वर में नाक बज रहा है।

गिठान बंधे पोलके से एक स्तन बाहर निहार रहा है।

'चंद्रू-चंद्रू' कहकर दो-तीन बार रंगन्ना के संबोंधित करने पर भी जब उसमें कोई हलचल नहीं होती है तो वह अचानक चिड़चिड़ा पड़ता है - "अरी उठ न री। कब का सुबे हो चुका है।"

उसमें कुछ चलन सी होती है। और इस चलन से उसके बगल में लेटा हुआ छोकरा भी कुनमुनता है। उसकी तरफ करवट ले पोलके से बाहर निकला हुआ स्तन उसके मुंह में थमा देती है।

"उठने का है कि नई। बड़ी मेमसाहब जैसा सो रही है।"

"रुक न। थोड़ा तो सबर कर। सुबे-सुबे ही जान खाने लगा है। एक तो इस छोकरे ने रात भर आंख पर पलक तक झपकने नई दिया। अभी भी इसका बदन जल रहा है और तू है कि मू अंधेले ही पीछे पड़ गया।"

www.eTelangana.org

"तेरा बिटवा कभी ठीक रहा है जो आज रहेगा। चल उठ। कंटराक्टर गॉ...... पर लात मारेगा तो मालूम पड़ेगा।"

डेरे के पिछवाडे से 'डुर्र-डुर्र.....'कीं-कीं' कहकर डुक्करों के लड़ने की आवाज आ रही है।

"उस भड़वे का मू जले"- वह बच्चे के मुंह से धीरे से स्तन निकाल पट-पट कर उंगलियां चटकाती हुई कहती है- "का गत बनाकर रख दिया है हमारा। डुक्करों से बुरा हालत करके रख दिया है भड़वे ने।"

जम्हाई लेती उठकर बैठ जाती है। कनपटी तक बह आये लार को बाईं भुजा से रगड़कर पोंछती है। सर के बाल चिड़िये के घोंसले की तरह छितराये हुए हैं।

"पूछा था क्या उससे?" दोनों हाथ फैलाकर धड़ को दाहिने और बांयी तरफ कमर के पास से घुमाकर सुस्ती निकालती हुई पूछती है।

"किससे?"

"और किससे? उसी भड़वे से।" उठकर साड़ी की खुल गई गोची को ठीक से खोसती हुई कहती है। -"भड़वा इत्ता धोका देगा करके सपने में भी नई सोची थी। और तू भी तो आगे पीछे कुछ नई सोचा, पाँच हजार रुपया लाकर उसके हाथ में धर दिया जमीन बेचकर।..अब दोनों को गॉ... के पीछे-पीछे घुमा रहा है।"

"पैसे देने तक तो मेरे जान के पीछे पड़ी रही अब उल्टा मेरे को बोल रही है।" चिड़चिड़ाहट में उसकी आवाज कुछ तेज हो जाती है।

सुवरों के लड़ने और चीखने की आवाज भी कुछ तेज हो जाती है। 'छू-छू' कहकर उन्हें भगाने की कोशिश करता -"इधर

साली ये जान खा रही है। उधर साले ये डुक्कर परेशान कर रहे हैं। सब मेरे जान पर लगे हैं"- कहता है।

चंद्रू गुस्से से उसकी तरफ देखती है और कुछ कहने जाती है कि चीखता हुआ एक डुक्कर डेरे की टट्टी से टकराता है। टट्टी हिलने लगती है - 'छू-छू' कहता रंगन्ना उसे मारने के लिये डेरे से बाहर भागता है।

करीब पचास-साठ डेरे। बांस की दो-तीन टट्टियों को अर्धचंद्राकार घेरे में बाँध कर बनाई हुई, मुर्गियों के दड़बों की तरह।

बाहर गली में कोलाहल है। धोती लालची पहना आदमी साइकिल के हैंडिल पर दो बड़े-बड़े दूध के कैन लटकाये लगातार घंटी बजाता हुआ चला जा रहा है। छिलके निकले नारियल की तरह का छोटा सा सर वाला अठारह-बीस साल का मंदबुद्धि छोकरा दोनों हाथ हवा में फैलाये 'भुर्इं-भुर्इं' करता हवाई जहाज बना भाग रहा है।

"अरी चल न री। पैले ही देरी हो गया बोले तो ये साली झोपड़ी से बाहर ही नई निकल रही है।" डेरे के सामने चंद्रू का इंतजार करता खड़ा चिडचिड़ाता है रंगन्ना। रंगन्ना यानी साढ़े पाँच फीट ऊँचा नौजवान। दुबला पतला मगर कसा हुआ बदन। माथे पर गोदने का निशान। धोती, घुटनों के उपर तक खोंसी हुई।

बच्चे को गोदी में लिये डेरे में से झुकी-झुकी बाहर निकलती है चंद्रू। उसके पीछे-पीछे निकलती है लाल-लाल फूलों का प्रिंट वाला पुराना लहंगा और चोली पहने एक सात-आठ साल की लड़की। दुबली पतली है और हाथ भी सूखी लकड़ियों की तरह सुकटे से।

www.eTelangana.org

"ले बिड्डा (बेटी) अब इसको ले ले। मैं काम पर जा रही हूँ।"

"मैं नई लेती। तम्मी (छोटा भाई) बहुत रोता है।"

"नई बिड्डा अच्छे बच्चे ऐसा नई बोलते। ले-ले मैं आते बखत तेरे लिये मुरकुल लाऊँगी।"

परन्तु वह लड़की पाँव पटकती रोने लगती है।

"पैले ही देरी हो गया बोले तो लाड़ कर रही है। खींचकर एक झापड़ दूँगा तो सब लाड़ निकल जायगा। चल ले छोकरे को.....।" रंगन्ना

छोकरी सहम जाती है। बच्चे को लेने लगती है परन्तु वह माँ की गोद छोड़ उसके के पास जाने को तैयार नहीं है।

"अरे दे न उसको। तेरा भी नखरा बहुत बड़ गया है।" आँखे तरेरते हुए बच्चे को उसकी गोद से खींच कर छोकरी को थमाता हुआ फिर कहता है - "मुकद्दम गॉ.... पर लात मारेगा तो तेरा सारा नखरा निकल जायेगा।"

चंद्रू गुस्से से उसकी तरफ निहारती है और कुछ कहना चाहती है कि रंगन्ना आगे बढ़ जाता है।

"तम्मी का ख्याल रखना" -कहती हुई वह भी आगे बढ़ जाती है। अभी भी उसका चेहरा तमतमाया हुआ है।

छोकरी सहमी नजरों से बस टुकर-टुकर देख रही है। छोकरा उसके पास आने को लालायित है।

सायकिल के कैरियर पर टोकरी में बकरी के बच्चे को बाँधे एक कसाई उधर से गुजर रहा है।

"अरे भागो इधर से। क्या मजमा बना रखा है।" अपने डेरे से कुछ फासले पर बच्चों का झुंड देखकर उन्हें भगाता हुआ रंगन्ना कहता है।

चंद्रू भी कूड़े के ढेर की तरफ देखती है। नाली के बगल

में बरगंडे की झाड़ी के नीचे चितकबरी सुवरनी अपने बच्चों को दूध पिलाती लेटी हुई है।

"शायद कल शाम में जने हैं। कित्ते सुन्दर लग रहे हैं।" गंदी नाली से आते बास के कारण नाक को पल्लों से दबाये पिछला कडवाहट भूल कर रंगन्ना से कहती है। परन्तु रंगन्ना को यह सब सुनने की फुर्सत नहीं है। लम्बे-लम्बे डग भरता आगे निकल जाता है।

"बुज्जी सुअरनी ने यहाँ बच्चे जने हैं। इधर मत आना। तम्मी को भी मत आने देना।" वह फिर पलटकर बुज्जी से कहती है।

"वो कोई दूध पीती बच्ची नई है। चल-चल जल्दी चल।" रंगन्ना वही से चीखता है।

कांक्रीट मिक्चर का ढोल घर्र्-घर्र्...घर्र्-घर्र् करता लगातार अपनी धुरी पर घूम रहा है।

तीमंजिले बिल्डिंग के छत का काम जारी है।

तैयार हुए माल को गमेले में भर एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे को सुपुर्द करती हुई मजदूरनियाँ सीढ़ी पर खड़े मजदूरों तक पहुँचा रही हैं और मजदूर एक के ऊपर दूसरे, दूसरे के ऊपर तीसरे को सुपुर्द करते हुए ऊपर छत तक पहुँचा रहे हैं। लकड़ी के चखलों से बने सिंट्रिंग पर गमले से माल पटकने की लगातार छप-छप की आवाज, पंक्तियों में खड़े मजदूरों को फटाफट एक लय में काम करता देख ऐसा भ्रम सा होता है मानों ये मशीन तो नही हैं लगातार घूमते हुए मिक्सर के ढोल की तरह।

'.....ये गमेला इधर दे...... ये इत्ता माल क्यों भरा..... मजदूरनियाँ इत्ता धीमीं क्यों कर रही हैं..... हराम-जादा,

www.eTelangana.org

भड़वा.....समाल के, देखने में तो भैंस जैसी है इत्ता वजन भी नई उठा सकती है..... खी-खी ही ही..... दईया रे..... ये थोड़ा कम डाल न..... तरह-तरह की बातें तरह-तरह का शोर शराबा..... सिमेंट का उठता गुबार..... मिक्सर के ढोल का घर्र्-घर्र्, फावड़ों की छप्-छप्, गमेलों के पटकने की टक्-टक्..... ये सब एक अजीब सा माहौल बना रहे हैं।

"बच्चे को रात में बुखार था। न जाने अब कैसा है? छाती में भी दूध भर आया है। एक बार देख आती तो अच्छा रहता..... !" अपने पास आये माल से भरे गमेले को राजम्मा के सुपुर्द करती चंद्रू कहती है।

वह उसकी हम उम्र है। है तो दुबली-पतली परन्तु गजब की फुर्ती है उसमें। साड़ी के पल्लों को कसकर कमर से बांध रखी है। -"तो जाकर देकर आ न दूध। पास ही तो है।" राजम्मा कहती है।

"पर मुकद्दम ने देख लिया तो? पैले ही छत डाल रहे हैं।"

"अरे कुछ नई होगा। डरती क्यों है? जा तू जा। मैं देख लूंगी।" अपनी बगल वाली मजदूरनी को गमेला सुपुर्द करके लौटती हुई वह कहती है।

राजम्मा की बांतों से उसमें कुछ साहस आता है। पंक्ति से छिटक कर थोड़ा आगे बढ़ती ही है कि -'लगता है कुछ मजदूरनियाँ गायब हैं' कहकर मुकद्दम की कर्कश आवाज गरम शीशे की तरह उसके कानों में पड़ती है और वह सहम कर फिर पंक्ति में लौट आती है।

"अरी तू जा न री। वो भड़वा तो ऐसे ही बकबक करता ही रहता है। कोई पूछे तो कहना पिशाब करने जा रही हूँ।" और फिर अपनी बगल वाली मजदूरनी से कहती है- "पिशाब करने जा रही है कि नई कहकर वो भड़वा सात-सात थोड़ी आयेगा देखने के लिये।"

दोपहर का सूरज सर पर तप रहा है। किसी तरह नजर बचाते हुए अपनी गली में पहुँचती है। दिल अब भी धड़क रहा है उसका।

बैलगाड़ी के चक्के से कटकर उबड़-खाबड़ बनी और धूल से भरी गली सुनसान है। धूप में पांव जल रहे हैं। गली के किनारे एक नंगा बदन काला कलूटा छोकरा टट्टी बैठा हुआ है। .....उससे कुछ दूरी पर एक चितकबरा सुंवर उसे निहार रहा है। वह नजदीक आये तो मारने के लिए छोकरा खपरेल के छोटे छोटे टुकड़े एक पर एक जमाता हुआ रख रहा है।

किसी तरह गली पार कर वह डेरे के पास पहुँचती है।

सुवरनी बरगंडे के छाँव में सुकून से बायें करवट लेटी बच्चो को दूध पिला रही है।

डेरे के अन्दर झांकते ही वह अचानक सन्न् रह जाती है। रोते चिन्ना को चुप कराने के लिये अपने अविकसित उरोज उसके मुँह में दे रही बुज्जी।

उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। निश्चल सी जहाँ की तहाँ ही खड़ी रह जाती है।

"तम्मी चुप ही नई हो रहा है अव्वा (माँ)" .....उसे देखकर रुआंसी सी हो वह कहती है।

www.eTelangana.org

"मेरी अम्मा! मेरी बिटिया इस उमर में ही तू माँ बन गई है रे बुज्जी" -कहती उसे छाती से चिपका लेती है चंद्रू। उसकी आँखों में आँसू डबडबा आते हैं।

डुग-डुग.....डुग-डुग करती हीरो होन्डा गाड़ी, कंस्ट्रक्शन स्पॉट पर आकर रुकती है। उसे देख दोनों मुकद्दम भागते हुए आते हैं। हाथ जोड़ कर 'दंडम दोरा' (प्रणाम हुजूर) कह उसके दोनों ओर हाथ बांधे खडे हो जाते हैं।

"हूँ! काम कैसे चल रहा है?" मोटर साइकिल पर बैठा हुआ ही वह पूछता है। मोटा तगड़ा आदमी है कंट्रैक्टर हनुमंत राव.... कौड़ी भैस की तरह गदराया हुआ बदन। ....चेचक दाग वाले चेहरे पर रिबायन का गोल्डन फ्रेम वाला चश्मा।

"ठीक चल रहा है दोरा। आधा छत हो गया है।" एक मजदूरनी काँच के दो गिलासों में पानी लाकर देती है। गाड़ी पर बैठे हुए ही वह गट्-गट् पी जाता है।

काम का निरीक्षण करने के लिए वह गाड़ी से उतर आगे बढ़ता है। जैसे जैसे वह बढ़ता जाता है एक के बाद एक मजदूर सब 'दंडम दोरा'-'दंडम दोरा' कहते हाथ जोड़कर प्रणाम करते जाते हैं और उसे जाने देने के लिए किनारे हटते जाते हैं। किसी के जवाब में सर थोड़ा सा हिलाता है, और किसी के जवाब में बिना उसकी तरफ देखे ही छत पर पहुँच जाता है।

"जाकर उससे पूछ न"- चन्द्रू रंगन्ना के पास भागती हुई आकर कहती है।

"अबी कैसे पूछूँ? गुस्सा होगा दोरा..... ।" रंगन्ना मजबूर

सा कहता है।"

"अरे गुस्सा वुस्सा नई होगा, तू पूछ तो। इत्ते दिन तक तो सबर करते रहे। छै महिना तो हो ही गया है। तू पूछ डरता क्यों है?"

"तू ज़ा मै नई पूछता। तेरे को काम छोड़कर इदर मेरे पास देख लेगा तो खैर नई। तू जा री यहाँ से।" रंगन्ना उसे ठेलता सा कहता है।"

"तो फिर मैं ही पूछती हूँ।"

"क्यों मेरी जान पर बैठी है। तू जा..... ।"

"नई जाती। मैं आज उससे पूछ कर ही रहूँगी।"

"ठीक है मैं ही पूछता हूँ। अब तू जा अपने जगे पर" - चंद्रू की दृढ निश्चयता देख मजबूर हो वह कहता है। पहले से ही काम में तेजी थी। कंट्रैक्टर के आने से और भी तेज हो जाता है। कंक्रीट मिक्चर का ढोल भी घर्-घर् करता कुछ और तेजी से घूमने लगा है।

निरक्षण करके कंट्रैक्टर हनुमंत राव वापस लौटता है। दोनों मुकद्दम उसके अगल-बगल अब भी लगे हुए हैं। फिर से हीरों होंडा पर जा बैठ जाता हैं।

"दोरा-दोरा!" रंगन्ना भागता हुआ आ दोनों हाथ जोड़कर उससे कुछ दूरी पर खड़ा हो जाता है।

मुकद्दम जलती निगाहों से उसकी तरफ देखता है।

"हूँ?" रोबदार स्वर में हनुमन्त राव कांट्रैक्टर हुंकार भरता है।

"दोरा! उसका क्या हुआ दोरा?"

"क्यों पीछे पड़ा है इत्ता? कह दिया न कोशिश कर रहा

www.eTelangana.org

हूँ। खदान की नौकरी कोई सब्जी-भाजी तो नई है कि गये और खरीद लाये....." डाँटता सा कहता है।

और इस डांट से वह पूरी तरह ठंडा पड़ जाता है। फिर भी साहस करके कहता है- "छै महीना हो गया न दोरा?"

"छै महीना क्या साल भी लग सकता है। मैंने कह दिया न कोशिश कर रहा हूँ। होते ही मैं खुद बता दूँगा। .....बार-बार पूछने की जरूवत नई है समझा। और फिर जब तक खदान में नौकरी नई मिलता तब तक तो ये काम है ही। दिया हुआ काम तो करना नई हो रहा है, और खदान में नौकरी करेगा बोलता है। .....चल भाग इधर से। जब देखो तब काम छोड़कर भाग आता है। कामचोर कहीं का.....!"

झिड़की सुन रंगन्ना अपना सा मुंह ले लौट पड़ता है।

'ऐसे' लोग बहुत कामचोर होते हैं। जब तक लात नई मारो काम नई करते हैं समझे? .....दोनों मुकद्दमों को उपदेश देता है। कंट्रैक्टर का गुस्सा देख दोनों सहमें से हुए हैं।

दोनों -'हाँ'- में सर हिलाते हैं।

वह किक् मारता है। गाड़ी की चीख सी निकल पड़ती है। भारी भरकम बदन को उठाये डुग-डुग करती भाग पड़ती है, अपने पीछे काला बदबूदार धुंआ छोड़ती हुई।

'थू'- कहकर चंद्रू उसके जाने वाले दिशा में थूकती है।

"खदान में नौकरी दिलायेगा करके भड़वा पाँच हजार रुपया गां..... के नीचे दबाकर रख लिया है। जमीन बेचकर दिये थे पैसा। गाँव में कित्ती मीठी-मीठी बात करा था। ऐसे कह रहा था मानों आते ही नौकरी तैय्यार मिलेगी। और अब यहाँ पर छै महीने से अपनी कटरक्टरी में मजदूरी करवा रहा है। रुपये डुबो न दे

इसलिये जोर जबरदस्ती से बात भी नई कर सकते हैं।" अपना दुखड़ा रोती चंद्रू, राजम्मा से कहती है।

"हम सब भी तो किसी न किसी तरह से उससे फंसे हुए हैं चंद्रू। गरीबों को ऐसे ही लूटते हैं, नई तो ये बड़े कैसे बनेंगे"- राजम्मा उससे सहानभूति जताती हुई कहती है।

मोहल्ले के शिशु मंदिर से लौटते छोटे-छोटे बच्चे सुअर के बच्चों को देख खुशी में ऐसे चहकते हैं मानों उन्हें खेलने के लिये कोई खिलौना मिल गया हो। ढेले ले-लेकर उन पर फेंकने लगते हैं। जब किसी बच्चे को जोरदार ढेला लगता और वह चीं कर चीखता तो ये खुशी से ताली पीटने लगते। सुअरनी गुस्से में इनकी तरफ भागती आती तो ये सब भी भागते और दूर जाकर ताली पींटते हुए खी-खी करने लगते। सुअरनी वापस लौट आती तो कुछ देर बाद ये भी अपनी पुरानी जगह पर वापस। फिर से वही ढेला फिकाव। फिर से वही छेड़खानी..... । और अब इनका साथ देने के लिये गली के दो आवारा कुत्ते भी आ गये हैं।

'मोती-मोती छू-छू.....' कहते उन्होने कुत्तों को भी उन पर लगा दिया। मौका पाकर कुत्ते भी उन पर टूट पड़ने का प्रयत्न करने लगे। अजीब खींचातानी। एक तरफ कुत्ते दूसरी तरफ उपद्रवी बच्चे। .....सुअरनी एक कुत्ते की तरफ बढ़ती तो दूसरा कुत्ता उसके बच्चों की तरफ आता, और उसको छोड़ दूसरे की तरफ बढ़ती तो पहला बच्चों पर टूट पड़ने की कोशिश करता। और वह इन दोनों में उलझी रहती तो एकाध ढेला छोकरों की तरफ से आकर उसके बच्चों पर पड़ता और 'चिक्' की आवाज से एक

www.eTelangana.org

चीख उसका मन दहला देती। उसकी आंखों में खून उतर आता है। वह इतनी खूंखार हो जाती है कि लगता है इनमें से कोई भी उसके हाथ लग गया तो चीर फाड़ कर के रख देगी।

कुत्तों को खदेड़ती हुई वह रंगन्ना के डेरे तक आ जाती है। कुत्तों और सुअरनी की खींचातानी में डेरा हिलने लगता है। डेरे में अकेला चिन्ना सो रहा है। उसे सुलाकर बुज्जी गली के बच्चों के साथ खेलने चली गई है।

खींचातानी और शोरगुल से अचानक चिन्ना की नींद खुल जाती है। वह घबराकर उठ बैठता है। डेरे में किसी को न पा दहशत में भर जोर-जोर से रोने लगता है और घुटने के बल रेंगता हुआ टाटका पर्दा हटाकर बाहर आता है आंगन में।

बाहर छोकरों का जमघट। कुत्तों और सुअरनी की खींचातानी। सुअरनी के बच्चे जान बचाने के लिए तितर बितर हो गये हैं। भयानक युद्ध भूमि का दृश्य। भद-भद...हूँ-हूँ....चीं-चीं..... । कुछ सोचने या समझने की उम्र नहीं है चिन्ना की। दहशत में भरा वह युद्ध भूमि की तरफ ही बढ़ जाता है। वह भी सुअरनी के बच्चों में मिल जाता है।

कुत्तों और बच्चों को दूर खदेड़ सुअरनी आकर तीतर-बीतर हुए अपने बच्चों को फिर से जमा करती है। काला कलूटा चिन्ना भी उन बच्चों में ही मिल जाता है। वह उसे पहचान नहीं पाती है। .....पर कुछ व्यवस्थित होने के बाद पहचानती है तो उसका क्रोध सातवें आसमान पर पहुँच जाता है। बेरहमी से उस पर टूट पड़ती है। अब तक की सारी बौखलाहट उस पर निकालने लगती है।

और जब तक गली में जाते कुछ बड़े लोग उसे सुअरनी के चंगूल से छुड़ाते हैं तो केवल उसकी कराहट ही शेष रहती है।

और खबर पाकर चंद्रू और रंगन्ना के भागते हुए आने तक वह कराहट भी समाप्त हो जाती है। उनके पीछे मजदूरों की सारी पलटन। मजमा सा लग जाता है..... । चंद्रू बच्चे को गोद में लिये दहाड़ मारकर रोने लगती है। सारी मजदूरनियाँ भी रोने लगती हैं। मजदूरों की आँखों में भी आंसू भर आते हैं।

सुअरनी अपने बच्चों समेत वहाँ से पीछे हटकर किसी सुरक्षित स्थान की तलाश में वर्कशाप के दीवार के पास कंटीली झाड़ियों के बीच से गुजर रही है। उसे देखते ही रंगन्ना की आंखों में खून उतर आता है। वही खून जो उस समय सुअरनी की आंखों मे था जब उसके अपने बच्चों पर वार हो रहा था। .....'तेरे को मैं जिंदा नई छोड़ूँगा'- कहता अचानक वह वहाँ पर पड़े ढेले को उठाकर बिजली की गति से सुअरनी की तरफ भागता है।

वह झाड़ियों में अदृश्य हो चुकी है। उसके साथी मजदूर उसे पकड़ कर फिर से लाते हैं। तरह-तरह की सहानुभूतिपूर्ण बातें। चंद्रू के अगल-बगल उसके साथ काम करने वाली मजदूरनियाँ बैठी विलाप कर रही हैं।

छत का काम रुक गया है। सारे मजदूर वहीं है। दोनों मुकद्दम बेचैन हैं। किसी से कुछ कह नहीं सकते हैं। .....काम के लिए वापस लौटने को कहें तो कैसी प्रतिक्रिया होगी मालूम नहीं।

सहसा डुग-डुग की आवाज वहाँ पर आकर रुकती है। लोग उसके लिए रास्ता छोड़ देते हैं। कंट्रैक्टर हनुमंत राव, चंद्रू के पास आकर बच्चे को देख, 'च् च्- च् च् बहुत बुरा हुआ' कहता रंगन्ना के कंधे पर हाथ रखकर सहानभूति जताता है। फिर सारे मजदूरों की तरफ देखकर- 'भई करनी को भला कौन टाल सकता है। जो तकदीर में लिखा होता है वही होता है। उसके लिये

www.eTelangana.org

बस इत्ते दिन का ही दाना पानी बंधा था यहाँ पर.....' कहता है।

कुछ देर और सहानभूति जताने के बाद वह भीड़ से बाहर आ अलग से दोनों मुकद्दमों से कानाफुसी करता है। फिर उस भीड़ में से चार-पाँच मजदूरों का नाम लेकर बुलाता है। जेब से नोटों की गड्डी निकाल सबके सामने ही पाँच सौ रुपया गिन रंगन्ना की जेब में रखता है और पाँचों से कहता है - "तुम लोग यहीं रुककर किरिया-करम का बंदोबस्त करो। तुम्हारी हाजरी मिल जायगी। .....पैंसे की और जरूरत पड़े तो मेरे पास आकर ले लेना" और फिर दूसरे सारे मजदूरों की तरफ देखता कहता है - "अब तुम लोग काम पर जाओ। छत का काम चल रहा है हजारों का नुकसान हो जायेगा। वैसे नुकसान हुआ भी तो कोई परवा नई। पर तुम्हारे इस तरह बैठने से बच्चा तो वापस आने वाला नई है।"

पर मजदूर टस से मस नहीं होते हैं।

"यहाँ पर बच्चा मर गया बोले तो इस भड़वे को काम की पड़ी है।" राजम्मा फुसफुसाती है।

"इसके कारन ही तो मरा है।" एक और मजदूरनी कहती है।

"इसका बेटा मरता तो पता चलता हरामजादे को। कसाई है, भड़वा कसाई।

"कीड़े पड़-पड़ कर मरेगा"..... राजम्मा उंगलियाँ चटखाती हुई कहती है।

अचानक रंगन्ना सर उठा कर उसके चेहरे की तरफ देखता है। चेचक के दाग से भरा चौड़ा काला चेहरा.....बड़ी-बड़ी आँखे, घनी काली मूंछे, मोटी गरदन। रंगन्ना को उसके चेहरे में अचानक कुछ बदलाव सा महसूस होता है..... उसे लगता है उसके दोनों

कान लम्बे होने लगे है।..... गर्दन फूल कर लगातार मोटी होती जा रही है, इतनी मोटी की वह गर्दन नहीं रह जाती है। सर, धड़ से सीधा जुड़ा हुआ लगने लगता है। चेहरा भी धीरे-धीरे लंबोदर सा होने लगता है और सामने खूंखार थूथन सा उभर आता है। नाक की जगह दो घिनौने से छिद्र मात्र और उसके नीचे फांको की तरह कटा मुख जिसके अंदर बड़े-बड़े तेज खूंखार दाँत।.....

और रंगन्ना को अचानक उसके थुथने और दाँत, लाल-लाल ताजा खून से पुते लगते हैं। अचानक बिजली की गति से उठता है और लपककर उसके आस्तीन को दोनों हाथों से कसकर पकड़ लेता है और दांत किटकिटाते हुए कहता है- "मैं तेरे को जिंदा नई छोडूंगा।" तूने ही मेरे बेटे को मारा है.... । वह उसे जोरों से झिंझोडने लगता है।

अचानक हुए इस हादसे से कंट्रैक्टर हनुमंत राव किंकर्त्तव्यमूढ़ सा रह जाता है। क्या हो रहा है उसे कुछ भी समझ में नहीं आता है। सारे मजदूर भी कुछ न समझ हक्के बक्के से रह जाते हैं।

और जब उन्हें समझ में आता है उनमें भी आक्रोश की लहर सी दौड़ पड़ती है। '-मारो साले को,' 'मारो साले को'- कहते लोग आगे बढ़ने लगते हैं। कंट्रैक्टर के चारों ओर घेरा कसता जाता है।

❀ ❀ ❀

समकालीन संचेतना
दीपावली विशेषांक - ८९

www.eTelangana.org

एडजस्टमेंट



यह लम्बी-चौड़ी सड़क देख रहे हैं न! यह इस महानगर की सबसे बड़ी सड़क है। क्या पूछा आपने..... इसका नाम? अरे सॉब आप भी कमाल करते हैं कुछ भी रख लीजिए न 'मेरिन ड्राइव'..... 'क्वींस रोड'..... 'गंगारेड्डी रोड'..... 'भूलाभाई देसाई मार्ग' अथवा 'जॉन कैनेडी रोड'। हर महानगर की तरह इन महानगरों के रोडें भी तो एक जैसी ही होती हैं।

एक के बाद एक लगातार तेजी से भागती हुई कारें, जीप, गाँडियाँ, स्कूटर, मोटर साईकिलें, खट्-खट् की आवाज करते भागते हुए इक्के, लोगों को बिठाए पसीने से तरबतर रिक्शा खींचते लोग, अनगिनत दौड़ती साइकिलें और इन सबके बाहर दोनों तरफ फुटपाथों पर धक्कमपेल करते पैदल चलते लोग, कोई सीना ताने हुए तो कोई सिर झुकाए हुए, सब अपनी-अपनी धुन में मस्त। इन फुटपाथों से लगीं दोनों ओर एक सिरे से दूसरे सिरे तक कतारों में खड़ी भव्य गगन चुम्बी इमारतें। दुकानों में करीने से रखे सबको

अपनी ओर आकर्षित करते तड़क-भड़क वस्तुएँ। क्या चीज नहीं मिलेगी आपको? दुनिया भर की सारी चीजें, कपड़े-लत्ते से लेकर सोने चाँदी हीरे जवाहरात सब कुछ इस रोड पर स्थित दुकानों में मिल जाएगा आपको।

अरे यह क्या..... ? सामने कपड़े के शोरूम में चटकीले रंग की साड़ियाँ पहनी हुई खड़ी कोमलाँगियाँ?..... अरे कब तक बिना हिले डुले इस तरह खड़ी रहेंगी?..... खा गए न गफलत। अरे सॉब ये सचमुच की औरते नहीं हैं। भड़कीले कपड़ों में लिपटी हुई प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियाँ हैं।

अरे बाबू मैने कहा न यह शहर है। यहाँ के इन्सान पुतले लगते हैं और पुतले इन्सान। यहाँ के लोग पुतलों की कद्र करते हैं इन्सान की नहीं। आये दिन इसी रोड पर कितने लोग गश खाकर गिर पड़ते हैं, दुर्घटनाओं में कितनों के हाथ पाँव टूट जाते हैं, कितनों की जाने चली जाती हैं, कितनी ही अबलाओं की इज्जत लुटती है, कितनी ही बहनों का अपहरण होता है। पर ये सब मामूली बातें हैं। इसकी फिकर किसी को नहीं है। पर आप शोकेश मे बन्द इन पुतलियों को हाथ लगाकर तो देखें। हंगामा खड़ा न हो जायेगा। पुलिस स्टेशन भी जाने की जरूरत नहीं, यहीं पर काम तमाम हो जायेगा।

वह देखिये काली चमकती हुई एम्बेसेडर कार गुजर रही है न, यह रोज सुबह आठ बजे इधर से ही गुजरती है। कार के पिछले सीट पर काला सूट, नीली टाई बांधे, आंखो पर स्टील का चश्मा चढ़ाये इतनी ठाठ से कौन बैठा है? यह है यहाँ से कुछ ही दूरी पर स्थित पेपर-मिल के जनरल मैनेजर। इस जैंटिलमेन का जितना ठाठ है, सामने की सीट पर बैठे स्टीयरिंग घुमाते इस

www.eTelangana.org

ड्राइवर का भी लगता है उतना ही ठाठ है। कलफ डाल कर कड़क इस्त्री की हुई बिन्नी की पैन्ट और सफेद बुशर्ट, सर पर बड़ा सा सफेद हैट, टाप् टू बॉटम सफेद ही सफेद।

आज इस जनरल मैनेजर सॉब के चेहरे पर कुछ तनाव और शिकन क्यों दिखाई दे रहा है। पता है आपको इन की फैक्टरी के मजदूरों ने वेतन बढ़ाने की मांग को लेकर हड़ताल कर दी है। उन मजदूरों में से कुछ को भड़का कर आपस में ही लड़ाने का उन महाशय ने प्लान बना डाला है। और आज उसी पर अमल करने जा रहे हैं। काम थोड़ा रिस्की है। इसलिये चेहरे पर कुछ तनाव लाजिमी है।

और यह जो सामने नीले रंग की पुती हुई चार मंजिली इमारत देख रहे हैं न? यह '.....' सेठ की है। जब महानगर और इस रोड का नाम ही नहीं ले रहे हैं तो भला उन सेठ का भी नाम क्यों ले। केवल सेठ कहना ही काफी है। सेठ कहने से जिस प्राणी की आकृति उभरती है ठीक उसी तरह की आकृति है इनकी यानि कि भारी-भरकम शरीर, थुलथुल मोटी तोंद, गोल मटोल चेहरा, सफेद मर्सराइज की धोती पर काला वॉस्कोट। गले में सोने की एक बारीक चैन जिसमें हीरा जड़ा हुआ है। हाथ में सोने की चमकती घड़ी, उंगलियों में हीरे जड़ित सोने की अंगूठियाँ और हाथों में स्टिक जिसके मूठ पर चाँदी की चादर बिछी हुई है।

कहते हैं आज से बीस साल पहले जब उसने इस महानगर में कदम रखा तो इसके पास खाने को पैसे न थे। शरीर ढकने के लिये बराबर कपड़े तक न थे। रोड के बाजू में भजियाँ बना कर बेचा करता था। इधर-उधर करके उसने एक छोटी सी दुकान खोल ली। लोगों से उधारी में सामान लाकर दुकान में भर दिया।

फिर कुछ दिनों बाद दुकान पर ताला डाल, दिवाला निकलने का बहाना कर लोगों के पैसे ले डूबा। लोग आये और मुंह पर थूककर चले गये।

पर भला पैसा कमाने वालों को इसकी क्या फिकर। उन्हें इज्जत रख कर करना भी क्या है। पहले पैसा कमा लें फिर इज्जत अपने आप आ जायेगी। जहाँ पैसा है वहाँ इज्जत है। जब पैसा ही नहीं है तो इज्जत रख कर फायदा भी क्या है। लोग पैसों को देखते हैं, किस साधन से कमाया है, यह नहीं देखते हैं।

इसके बाद उसने अपने बड़े बेटे के नाम पर इससे भी बड़ी दुकान खोली-- उसका भी दिवाला निकला। इस तरह तीन-चार बार दिवाला निकला। और हर बार पहले से बड़ी दूकान खुलती गई। अब सबसे छोटे बेटे के नाम पर बड़ी दुकान चल रही है। और उसने धीरे-धीरे इतनी बड़ी बिल्डिंग खड़ी कर दी। आज उसकी गिनती इस महानगर के जाने माने धनी व्यक्तियों में होती है। समाज में ये सम्मानित व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हैं, बेचारे पुण्य के कामों पर उदारता से दान भी देते हैं। इस लिये इस महानगर में इनका बहुत बड़ा नाम है।

पर मैं आप को कहानी सुनाने जा रहा हूँ वह इन सबकी नहीं है। यह कहानी है इस फुटपाथ के उस कोने पर उकड़ूँ बैठी भीख माँग रही बुढ़िया है न, उसकी है। हाँ उसे बुढ़िया ही कहेंगे। उम्र तीस साल से भी कम है तो क्या हुआ। जवानी में ही बुढ़ापे को पा गई है।

वह इस महानगर में कब आई, कैसे आई, उस के माँ-बाप कौन है, यह बात किसी को तो क्या उसे स्वयं को, भी नहीं मालूम है। जब से होश सम्भाला अपने-आपको नंगे बदन एक

www.eTelangana.org

कटोरी लिये लोगों के सामने हाथ फैलाते हुए पाया है। बस उसे इतना ही याद है। कोई उसकी कटोरी में एक-दो पैसे डाल देता, कोई माई रात का बासी भी डाल जाती, कोई उसकी तरफ देखता भी नहीं और कोई आँखे तरेरते हुए आगे बढ़ जाता। किसी की गालियों की भीख भी उसे मिल जाती, और कोई तंग आकर एक दो झापड़ भी रसीद कर जाता। कभी-कभी वह जूठे फेंके हुए पत्तलों पर अपने हिस्से के लिए कुत्तों से लड़ती दिखलाई देती, और वहीं पर सेठ के नन्हे मुन्ने बच्चे उन पत्तलों को भी न चाटने देने के लिए उस पर पत्थर फेंका करते।

यह फुटपाथ ही उसका घर है। इस पर वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझती है। कई बार कार्पोरेशन वालों ने उसे यहाँ से उठा कर दूर फेंक दिया। पर वह फिर लौट कर आ गई। तंग आकर उन्होंने उसे मना करना ही छोड़ दिया।

इसी फुटपाथ पर उसे जीवन-साथी मिला था। बायीं ओर जहाँ फुटपाथ समाप्त होता है वहाँ एक नाला है। वाहनों के आने-जाने के लिए उस पर एक पुल बना हुआ है। पुल के नीचे झुरमुट में रात में कौन कहे दिन में भी अन्धेरा रहता है। महानगर की पूरी गन्दगी उस नाले में से गुजरती है। उसी जगह में ही उन दोनों ने सुहागरात मनाई थी। जब कभी रोमांस करने का दिल होता, पुल के नीचे चले जाते और फिर वापस फुटपाथ पर। रहना, सोना, खाना-पीना सब फुटपाथ पर।

पर मर्द कितना कायर होता है, कितना निर्मोही होता है, कितना दगाबाज होता है इस बात का पता उसे तब चला जब वह एक दिन उसे छोड़ कर भाग निकला और आज तक नहीं लौटा। वह यूँ ही भाग जाता तो भी कुछ नहीं था पर वह तो एक बड़ा बोझ

भी उस पर डाल गया जिसे उसने नौ महीने पेट में रख कर ढोया और एक साल से गोद में लिए ढो रही है।

पहले उसे अपनी उतनी कोई फिकर नहीं थी पर अब उसे फिकर है उस बोझ को सम्भालने की। वह अब खुद के लिए नहीं जी रही है बल्कि, मांस के उस लोथड़े के लिए जी रही है।

वह कुछ दिनों से चलने-फिरने में असमर्थ है। वहीं फुटपाथ पर पड़ी रहती है। अपने ज्यादा दिन जीने की उम्मीद नहीं रही उसे अब। इसी कारण बेटे की चिन्ता सता रही है। उसे, हर पल छाती से लगाए सोचती है- 'अभी इसकी उमर ही क्या है, मेरे मरने के बाद क्या करेगा।' आकाश की और हाथ उठा कर दुआएँ माँगती है- 'हे अल्लाह मुझे इतनी जल्दी मत ले जाना...... कम-से-कम मेरा लाल भीख माँगने लायक तो हो जाए.....।'

अरे यह क्या कोलाहल है......घबराइये नहीं...... महानगर का दूसरा नाम ही कोलाहल है। यहाँ आए दिन हड़तालें होती हैं, जुलुस निकलते हैं, अश्रुगैस के गोले छोड़े जाते हैं। लाठी चार्ज से लेकर फाईरिंग तक हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है।

आपको पहले ही बता चुका हूँ कि पास ही एक पेपर मिल है। सुबह आठ बजे सर्-सर् की आवाज करती हुई जो काली अम्बेस्ड़र कार यहाँ से गुजरी है न, उसमें बैठे हुए जेंटलमैंन इसी मिल के मैनेजर है। आज उन्हीं के कामगारों ने हड़ताल कर दी है और जुलूस निकाल रहे हैं।

देखो जुलुस इधर ही बढ़ता चला आ रहा है...... 'मैनेजमेंट मुर्दाबाद...... अपनी माँगे लेकर रहेंगे...... दुनियाँ के मजदूर एक है......।'

अरे यह क्या आपस में ही गाली-गलोच, पत्थर बाजी,

www.eTelangana.org

धक्का-मुक्की होने लगी है। दो ग्रुप क्यों बन गए हैं? मैंने पहले ही बताया था न कि यह सब उन जनरल मैनेजर की चाल है हड़ताल तोड़ने की। ......वह देखो पुलिस के दस्ते भी आ गए...... अश्रुगैस...... लाठी चार्ज...... भगदड़ मच गई। भागो-भागो कहीं हम पर भी एकाध न पड़ जाए......।

देखिए अब खतरा नहीं है। भीड़ छंट गई है। आ जाओ बाहर...... अरे यह बुढ़िया अपने बेटे को छाती से लगाए क्यों रो रही हैं? .....उस बच्चे का शरीर पूरा पिचक-सा क्यों गया है?...... उस पर जगह-जगह लाल लाल धब्बे क्यों हैं?...... अब समझ में आया वह माँस का लोथड़ा लोगों के पाँव के नीचे आ कर पिस गया था।...... अब न हिल रहा है न डुल रहा है।

पर यह बुढ़िया कब तक उसे छाती से चिपकाये बैठी रहेगीं, अरे-अरे अब तो भारी दुर्गन्ध भी आने लगी है। वह देखो कार्पोरेशन की कूड़ा ढोने वाली वैन भी आ गई। ......खाकी निकर ......खाकी कमीज पहने और खाकी टोपी लगाये तीन चार आदमी उसमें से बाहर कूद रहे हैं और बुढ़िया की ओर बढ़ रहे हैं। डर कर बुढ़िया ने अपने बेटे को छाती से चिपका लिया है। देखो उन्होंने जबरदस्ती उसे छीनकर किस निर्दयता से कूड़े के ढेर की तरह वैन में पटक दिया है। भुर्र...... र्र र की आवाज करती वैन चल पड़ी है। बुढ़िया दहाड़ते हुए छाती पीटते हुए - 'मेरे बेटे को मत ले जाओ, मेरे बेटे को मत ले जाओ', कहते हुए पगलाई सी वैन के पीछे भागी जा रही है......।

महानगर का जीवन फिर से पहले की तरह व्यस्त है। मोटर, कार, स्कूटर सब पहले की तरह ही भाग रहे हैं...... फुटपाथ पर धक्कमपेल हो रही है-- शोकेश में खड़ी कोमलांगियों के चेहरे पर फिर वही रौनक है। सामने चार मन्जिले बिल्डिंग वाले सेठजी उसी ठाठ से दरवाजे के सामने खड़े हैं- और कल्लू रिक्शेवाला पहले की तरह ही रिक्शा खींच रहा है।

वह देखो काली अम्बेस्ड़र कार फिर से पहले की तरह गुजर रही है। पर उसमें बैठे जनरल मैनेजर सॉब के चेहरे पर कोई तनाव अथवा शिकन नहीं है बल्कि सन्तोष और गर्व व्याप्त है। वह मजदूरों की हड़ताल तोड़ने में सफल हुआ हैं। पचास मजदूरों को काम से निकाल दिया हैं। फैक्टरी पहले की तरह चल रही है। मजदूर पहले की तरह ही काम पर जा रहे हैं - पहले टूटे और फिर परिस्थितियों से समझौता कर लिया। विवाद को भूल कर अपने-आपको नये परिवेश में ढाल लिया।

.....और देखो वह बुढ़िया फुटपाथ पर अपने सामने एक चिथड़ा बिछाए पहले की तरह ही उकड़ूं बैठी भीख माँग रही है, पर अब हर बार की तरह बाजू में उसका बेटा नहीं है। लोग एक-दो पैसे उस चीथड़े पर डालते हुए चले जा रहे हैं।

इसी का नाम तो एडजस्टमेन्ट है। अगर यही एडजस्टमेन्ट और विषादों को भूल जाने की प्रवृत्ति मानवों में व्याप्त नहीं होता तो शायद आज इस रोड का और इस महानगर का कुछ दूसरा ही रूप होता......।

नवयुवक कल्याणकारी परिषद मजीठा, अमृतसर द्वारा पुरस्कृत और बरोह-३, २० जुलाई १९८० में प्रकाशित।

www.eTelangana.org

अक्वेरियम में बन्द गहरे समुन्दर की रंगीन मछलियाँ



ट्रन......ट्रन...... ट्रन......ट्रन

फोन की घंटी बजती है। अब तक का आवेग, उत्तेजना एकाएक थम सा जाता है...... मुझे इस घंटी से डर सा लगता है। डर नहीं, बल्कि एक ईर्ष्या सी है इस फोन से। वही ईर्ष्या, जो एक सौत से होती है। और यह सौत नहीं तो और क्या है?

मन के समंदर में तूफान से उठे आवेग को किनारों की सख्त चट्टानों पर पूरी शक्ति से बौछार करके ही शाँत करना चाहती थी। इस वक्त राजेश को किसी भी हालत में अपने आगोश से नहीं छोड़ना चाहती थी, परन्तु मुझे अच्छी तरह मालूम है, कि राजेश के लिए मुझसे ज्यादा फोन ही महत्व की चीज है। वह मुझे छोड़ सकता है, फोन को नहीं। उसे रोकने का प्रयत्न करके कोई फायदा नहीं है। और यही सोच मेरी बाहों का घेरा अपने-आप ढीला पड़ जाता है। '-साला इस फोन को भी इसी वक्त आना था'...... बडबड़ाता हुआ वह उठता है।

मुझे मालूम है, इस वक्त फोन पर क्या मेसेज आयेगा, 'सर दो नम्बर ऐयर सेपरेटर का मेन मोटर जल गया है'...... 'सर, एफ.डी. फैन चालू नहीं हो रहा है...... सर अनालाइजर बराबर काम नहीं कर रहा है...... सर तीन नम्बर कंप्रेसर ट्रिप हो गया है...... टवर रियेक्टर, एयर सेपरेटर, कम्प्रेसर, गेयर बॉक्स, ब्रेक डाऊन, जॉम, ड्राफ्ट, डिरेलमेंट, आऊटपुट, स्टॉक, काउँटर, रनिंग आवर्स...... यही कुछ बंधे-बंधाए शब्द ही तो हैं, जो फोन पर पिछले दस-बारह वर्षों से सुनती आ रही हूँ। स्वयं के नॉन टैक्निकल होने के बावजूद भी टेक्निकल टर्मों से अच्छी तरह वाकिफ हो चुकी हूँ।

"हलो राजेश स्पीकिंग...... हाँ-हाँ...... क्या? मेन गेयर बॉक्स का ?...... कौन से कंप्रेसर का? दो नम्बर का?...... अरे ऐसे कैसे बढ़ सकता है टेम्परेचर? ......इट इज इंपासिबुल। शाम को ही चेक किया था हम लोगों ने...... विस्कोलेट का लेवेल देखा क्या?"

राजेश फोन पर बात कर रहा है। उसकी कमर पर सफेद लुंगी लिपटी हुई है। सफेद लुंगी उसे बहुत फबती है। वह नंगा धड़ बैठा है। इस तरफ ही पीठ किए हुए है। चुपचाप उसकी पीठ को ही निहारती रहती हूँ। सचमुच कितनी अच्छी पर्सनालिटी पायी है राजेश ने। नंगी पीठ पहाड़ की तरह है। पीठ के बीचों बीच गर्दन से लेकर नीचे के हिस्से तक लगातार गहरी होती चली जाने वाली धारी ऐसी लग रही है मानों पहाड़ को बीच से काटकर कोई सोता फूटा हो।

मुझ मालूम है वह अब फैक्टरी जाना किसी भी तरह अवाइड नहीं कर सकता है। झटपट पैंट-शर्ट पहनेगा, पावों में शू

www.eTelangana.org

डालेगा, और मोटरसाइकल बाहर निकाल स्टार्ट कर चल देगा।

"......गेयर बाँक्स से कुछ आवाज आ रही है क्या?...... नहीं न?...... सो देयर इज नो फ्रिक्शन...... फिर विस्कोसलेट लेवेल भी ठीक है, देन हाऊ द टेंपरेचर कैन रीच दट हाई?...... लगता है मुझे आना ही पड़ेगा...... ठीक है, मैं आ रहा हूँ...... मेरे आने तक गेयर बॉक्स को कुछ नहीं करना"- वह फोन रख देता है।

"सारी डार्लिंग...... आई कान्ट अवाइड...... जाना पड़ेगा" कहते हुए वह तैयार होने लगता है। दरवाजा खोलकर, जब बाहर मोटरसाइकल निकालने लगता है, तो उठती हूँ। नाइटी का बटन लगाते गेट खोलने पर रेती पर सोया हुआ गली का कुत्ता पास आकर दुम हिलाने लगता है। गेट का ग्रिल लगा कर वापस लौटती हूँ। ......हवा के झोंको के साथ ही आंगन में रातरानी के फूलों की महक नथुनों से टकराती है। ......सचमुच रातरानी...... रात की रानी ही होती है। ......किस मस्ती और अल्हड़पन से अपना पराग बिखेर रही है। और 'मैं' अपने बारें में सोचते ही फिर से उदास सी हो जाती हूँ। -दरवाजा भिड़ा बेड पर लेट जाती हूँ।

अन्तर में उठा आवेग, चट्टानों पर तीव्र बौछार करने की इच्छा पूर्ति के बिना कब का शांत हो चुका है।

दीवार घड़ी रात के साढ़े बारह बजाती है।

आंखों से नींद कोसों दूर है। इतने बड़े क्वार्टर में अकेली ही हूँ। अकेलेपन की आदत भी तो हो गई है। इस तरह अकेला रहना पड़ेगा शादी के पहले, कल्पना तक न की थी। छोटी थी, तो मम्मी-डैडी के साथ सोती थी। कुछ अकल आई तो माया के साथ सोती थी। अलग बेड होने के बावजूद माया की बगल में ही सोती थी। माया मेरी छोटी बहन तो थी पर गजब की साहसी। रात में

बिल्कुल नहीं डरती थी। और मैं नम्बर वन डरपोक। एटैच्ड़ बाथरूम रहने के बावजूद शादी होने तक रात में अकेली जाने से डरती थी। माया चाहे कितनी ही गहरी नींद में क्यों न हो......उठाने के बाद चिड़चिड़ायेगी, यह पता होने के बावजूद भी उसे जगाकर ही बाथरूम जाती थी।

बीते दिनों की बातें जेहन में आने लगती है। जब राजेश के साथ शादी की बात तय हुई थी, तो कितनी खुश थी। - इंजीनियर, और वह भी इतने बड़े रेप्युटेड कंसर्न में। सहेलियाँ तो मानों मुझसे ईर्ष्या ही करने लगी थीं। तरह-तरह के सपने बुने थे मैने, राजेश और अपने विवाहित जीवन को लेकर।

तुरन्त शादी भी हो गई थी। परन्तु शादी के बाद यहाँ आ भी तो नहीं सकी थी राजेश के साथ। नई-नई नौकरी जो लगी थी उनकी। प्रोबेशन में थे, उनका क्वार्टर भी शेयरिंग में जो था।

'तो क्या कॉलोनी के बाहर हम किराये में कमरा लेकर नही रह सकते ?' मेरे इस भोलेपन पर राजेश ऐसे हँसा था, मानों मैंने उसे बहुत ही अंडर एस्टीमेट किया हो। मेरी यह हालत थी, कि मैं राजेश को छोड़कर एक मिनट भी नहीं रह सकती थी- 'नो डार्लिंग! आई मस्ट स्टे इन दी कॉलोनी। मुझे कालोनी में रहना जरूरी है। एन ऑफिसर नेवेर लीव्स दी कॉलोनी। ......उसकी ड्युटी चौबीसों घन्टे होती है। जाने कब किस वक्त इमर्जेन्सी आ जाय। आफ्टर आल आई एम इन रेस्पांसिबुल पोजीशन......।' राजेश की इन बातों ने ऑपसेट तो किया था, परन्तु दूसरी तरफ राजेश की इस पोजीशन पर बहुत गर्व भी हुआ था। यह सोचकर कि सचमुच वह बहुत बड़ा ऑफिसर है, एंड आई एम दी वाइफ ऑफ देट बिग ऑफिसर।

www.eTelangana.org

राजेश की बिदाई के वक्त रुलाई दबाये नहीं दब रही थी। मुझे ऐसा लग रहा था, मानों हमारा रिश्ता तो शादी के बाद से नहीं, बल्कि जनम-जनम से है। हम एक-दूसरे के बिना कदापि जिंदा नहीं रह सकते हैं। वह भी बहुत ही दुःखी था। बिदा लेते वक्त उसकी भी आँखे डबडबा आई थीं। सांत्वना देते हुए बोला था- 'डार्लिंग! मैं जाते ही तेरे को भी बुलाने की कोशिश करूंगा।'

और इसके कुछ दिनों बाद ही राजेश का बुलावा भी आ गया था। वह भी भला मुझे छोड़कर कैसे रह सकता था। हमारे लिये तो कुछ दिनों का यह बिछड़ाव मानों एक युग ही था। कवियों द्वारा अपनी रचना में चित्रित बिरह-वेदनाओं को मैं अब तक अतिरंजना और काल्पनिक ही समझती थी, परन्तु अब मुझे मालूम पड़ गया था, कि मेरी बिरह-वेदना के सामने तो वे भी तुच्छ ही हैं।

राजेश के एक रूम पार्टनर का ट्रांस्फर किसी सिस्टर कंसर्न में हो गया था। बचा दूसरा पार्टनर, एक अन्य बैचलर कलीग के क्वार्टर में रहने को मान गया था। राजेश का मेसेज मिलते ही मैं नयी-गृहस्थी की कल्पना कर फूली नहीं समाई थी। मेरी नयी गृहस्थी बसाने के लिए साथ में मम्मी और डैडी भी एक हफ्ते का प्रोग्राम बनाकर आये थे।

पर दूसरे ही दिन राजेश फैक्टरी से मुँह लटकाये लौटा था। पूछने पर बोला- 'यह कम्पनी की पालिसी है कि एक प्रोबेशन आफिसर अपने साथ अपनी फैमिली नहीं रख सकता है। यह डिसिप्लेन के अगेन्स्ट है। और हमारे जी.एम. डिसीप्लेन के मामले में बहुत ही स्ट्रिक्ट हैं।'

ट्यूबलाइट के पास एक बड़ी सी छिपकली न जाने कब

से उस रंगीन तितली का दबोचने के चक्कर में है। अचानक दबोच ही लेती है। कुछ क्षणों तक उसके मुँह के बाहर केवल उसके रंगीन सुनहरे पर ही दिखलाई देते हैं। और फिर वे भी गायब हो जाते हैं। छिपकली आराम से दीवार पर रेंगती हुई पहले वाली जगह पर जाकर फिर से ऐसे बैठ जाती है, मानों कुछ हुआ हीं नहीं है।

राजेश अपना इंप्रेशन और खराब नहीं करना चाहता था। पिताजी ने भी मुझे समझाया था कि यह राजेश के कैरियर से जुड़ा हुआ प्रश्न है। दो-चार महीनों की तो ही बात है। उनकी इन बातों से मैं भी सहमत थी। परन्तु उनसे फिर से अलग रहने की कल्पना से ही कांप उठी थी।

हमें अपने भविष्य के बारे में सोचना था। राजेश एक रेसपांसिबुल ऑफिसर था और उसे अपना कैरियर भी बनाना था। और इसी के चलते हम जैसे आये थे, वैसे ही लौट पड़े।

परन्तु इस घटना के बहुत दिनों तक मुझे इस बात का आश्चर्य था, कि हमारे आने की खबर इतनी जल्दी भला टॉप मैनेजमैंट तक कैसे पहुँच गई थी। पर, अब तो मुझे अपने इस भोलेपन पर हँसी भी आती है। आज हमारे घर में क्या सब्जी बनी है- इसकी खबर भी उन्हें रहती है।

हमारे दुबारा अलग रहने की वह पीड़ा, वह तड़प, वह बैचेनी, वह वेदना- आज तक भला मैं कहाँ भूली हूँ।

कंठ सूखा जा रहा है। उठती हूँ। फ्रिज से बोतल निकाल गट-गट कर आधी बोतल खलास कर जाती हूँ।

सोने का बिल्कुल जी नहीं कर रहा है। बेचैनी सी होती रहती है। सोफे पर बैठ जाती हूँ। अकेलेपन को दूर करने के लिए

www.eTelangana.org

वी.सी.आर. पर कोई कैसेट लगाया जाय तो? पर सभी तो देखी हुई फिल्में ही हैं। क्या नयापन है उनमें। वही हीरो, हिरोइन, विलन, ढिसुम-ढिसुम सब कुछ फार्मुलाबद्ध...... नेशनल प्रोग्राम तो कभी का समाप्त हो चुका होगा। रिमोट पर स्टार का स्पोर्ट्स चैनेल दबाती हूँ ...... वेस्टइंडीज वर्सेज पाकिस्तान का क्रिकेट मैच......। एक जमाना था, मुझे भी क्रिकेट देखने का कितना क्रेज था। खाना-पीना तक भूल जाती थी। पर अब बोरियत होती है। सोचती हूँ, कि लोग क्यों इसके पीछे इतने पागल हैं। ऑफिस में, क्लब में, होटल में जहाँ भी देखो यही चर्चा। बर्तन मांजने वाली अनपढ़ रामबाई तक पूछती है -'मेमसाब क्या इस्कोर है?' क्या रखा है इस गेम में? बस आराम से टुक टुक - टुक टुक गेंद मारते जाओ। अरे खेलना है तो फुटबाल खेलो, हांकी खेलो...... इसमें एक मिनट के लिये भी कोई प्लेयर आइडिल नहीं रहता है।

चैनल बदल देती हूँ। एम.टी.वी. पर घुंघराले बालों वाली कोई पॉप सिंगर कूल्हे मटका-मटका कर जोर-जोर से दहाड़ रही है। अजीब पोशाक है उसकी। ......और साथ में है कान के पर्दे फाड़ देने वाला म्यूजिक। सर भन्नाने सा लगता है। देखें स्टॉर प्लस पर भला क्या आ रहा है। ......चैनल चेंज करती हूँ। ......दिस इज स्टार प्लस नो मैच टू दी स्टॉर नेटवर्क। रूटीन......हर बारह-पंद्रह मिनट बाद यही-विज्ञापन, ठीक मेरी अपनी रूटीन जिंदगी की तरह।

टी.वी. ऑफ कर देती हूँ। पहले पहल घर में जब यह कलर टी.वी. आया था तो कितनी खुश थी। मम्मी, डैडी, माया, सुमित्रा-सबको यह सूचना लिख भेजी थी। हर वक्त टी.वी. से चिपकी बैठी रहती थी। न खाने की सुध, न पीने की। ऊपर से

केबुल एंटीना से रोज ही पिक्चर।......

लाइट आफ करके बिस्तर पर लेट जाती हूँ। आँखे बन्द करके सोने की कोशिश करती हूँ। गली का कुत्ता लम्बे सुर में रो रहा है।

झपकी लगने को होती है कि सर्र-सर्र की आवाज से चौंक सी पड़ती हूँ। चौकन्ना होकर आहट लेने की कोशिश करती हूँ उसी तरह लेटी हुई ही। उठकर लाइट ऑन करना चाहती हूँ पर हिम्मत नहीं हो रही है। आवाज लगातार आ रही है। हिम्मत करके किसी तरह उठती हूँ, और लाइट ऑन कर देती हूँ। दीवार पर बच्चों वाला कैलेंडर सर्र-सर्र करके डोल रहा है कूलर की हवा में।

याद आता है बिस्तर पर जाते वक्त कूलर की पोजीशन थोड़ी बदल दी थी- इसी से यह......

कैलेंडर अभी भी डोल रहा है। उसमें नन्हें-मुन्ने दो बच्चे। ......गुलगुले की तरह गालों वाले। -और इसके साथ विनोद और तनु की याद आने लगती है। उनका कैरेम बोर्ड पलंग के पास दीवार से सटाकर रखा हुआ है। लिटाने पर आँखे बन्द और बैठाने पर आँखे खोलने वाली तनु की गुडियां रैक में उदास खड़ी हुई है। -लगता है बड़ी बड़ी आँखों से मुझे ही निहार रही हैं। शायद इन आँखों में भी नींद नहीं है मेरी तरह ही। किस तरह तनु अपनी इस गुड़िया को नहलाती-धुलाती थी। किस तरह उसको गोदी में लिटाकर थपकियाँ देती हुई लोरी गाकर सुलाती थी। ......और उस दिन...... उस दिन कमरे में इधर-उधर ताक कोनें में बैठ अपना स्तन उसके मुँह में लगाकर किस तरह दूध पिलाने की कोशिश कर रही थी।

www.eTelangana.org

उनके रहते घर कितना अस्त-व्यस्त रहता था। कभी कोई चीज ठिकाने पर नहीं रहती थी। हो हल्ला होता रहता था, परन्तु अब सब कुछ कितना शांत है। ......सब चीजें करीने से अपनी-अपनी जगह पर किस तरह रखी हुई हैं। ......पर कहाँ है वह चार्मिंग।

क्या कर रहा होगा मेरा विनोद अभी...... और तनु कैसे सो रही होगी हॉस्टल में अकेली? वह तो मुझे एक मिनट के लिये भी छोड़कर नहीं रहती थी। ......इतनी छोटी उमर में भी उन्हें अकेले रहना पड़ रहा है।

उठकर तनु की गुड़िया को रैक से उठा लेती हूँ। गोद में लिटाकर सुलाने लगती हूँ।

कितना मना करने के बावजूद भी राजेश ने उन्हें हॉस्टल में डाल दिया था। ......जाते वक्त किस तरह सूनी आंखों से निहार रहे थे दोनों। रो भी तो नहीं सके थे बेचारे। रोना यहां की सोसाइटी में मना जो है। इतनी छोटी उमर में ही अपनी सोसायटी के कायदे-कानून से किस तरह परिचित हो गये थे।

राजेश कहता है- कंपनी जो फेसिलिटी दे रही है उसको हमें यूटीलाइज करना ही चाहिए। एक बच्चे के पीछे हर महीना पाँच सौ रुपया एजुकेशनल अलाउन्स कोई जोंक थोड़ी है।

पाँच सौ रुपया। सचमुच जोक नहीं है। कंडीशन यह है कि बच्चे को केवल यहाँ से बाहर रखकर पढ़ाया जाय। किस स्कूल में पढ़ा रहे हैं, कौन से गाँव में पढ़ा रहे हैं, हॉस्टल में रखे हैं या नहीं इससे उन्हें कोई मतलब नहीं। बस वे कॉलनी में अपने पास रहकर न पढ़े। यही एक शर्त है।

सुमित्रा का खत तिपोई पर पड़ा है। सुमित्रा मेरी ममेरी

बहन। आज ही आया है यह खत। लिखा है - बहुत ही इच्छा थी कि कम-से-कम मंटो को तो किसी अच्छे रेसिडेन्सियल स्कूल में डालकर पढ़ाऊँ। परन्तु ये तो किसी भी हालत में नहीं मान रहे हैं। हर हालत में कोशिश करके देख लिया है। उसे यहीं पर दाखिला दिला दिया है। बच्चों को अलग रखना इन्हें कदापि पसंद नहीं है......

कितना दुख है उसे अपने बेटे को रेसीडेन्सियल में भर्ती न कराने का। आजकल बच्चों को रेसिडेन्सियल में रखकर पढ़ाना तो एक फैशन हो गया है। दूसरों की देखा-देखी वह भी अपने बच्चों को रेसीडेन्सियल में ही दाखिल कराना चाहती है। नादान छोकरी। बच्चों से दूर रहने का दर्द क्या होता है तेरी समझ में यह कभी नहीं आयेगा। और फिर इस कच्ची उम्र में माँ-बाप से अलग होने पर बच्चों पर क्या गुजरती है, यह भी भला तू क्या समझेगी। बस कैरियर......कैरियर......कैरियर जैसे इस कैरियर के सिवाय जिन्दगी में और कुछ है ही नहीं।

ड्राइंगरूम में लाइट ऑफ करना भूल गई हूँ। फैन भी वैसे ही घूम रहा है...... घूमने दो क्या फर्क पड़ता है। यहाँ तो दिन में भी सभी लाइट ऑन रहता है। ......कुछ नहीं सूझ रहा है। चलो लाइट और फैन ऑफ ही कर देते हैं। ड्राइंग रूम में कार्नर में आक्वेरियम में दो छोटी-छोटी रंगीन मछलियाँ तैर रही हैं।

जो मछलियाँ तैर रही हैं, उनमें एक बहुत ही सुस्त हो चुकी है। शायद एक दो दिन में दम तोड़ दे। यह अक्वैरियम पिछली बार जब हम मद्रास गये थे तो खरीदे थे। ......जब लाये थे, तो आठ मछलियाँ थी, परन्तु इस नयी परिस्थिति में अपने-आप को ऍडजस्ट न कर एक के बाद एक दम तोड़ती गयीं और अब

www.eTelangana.org

केवल दो ही बची हैं। दोपहर के वक्त जब समय नहीं कटता है इसके सामने बैठी घंटों इन मछलियों को निहारती रहती हूँ। कभी-कभी सोचती हूँ कि अथाह समंदर में तैरने वाली ये मछलियाँ किस तरह एक छोटे दायरें में कैद हो गयी हैं। इस दायरें से बाहर निकलने की उनमें जो छटपटाहट है भला वह कौन समझेगा.....।

सुमित्रा का पति समीर किसी कपड़े के मिल में अस्सिस्टेंट फिटर है। वह स्वयं भी किसी छोटी सी अगरबत्ती कंपनी में अगरवत्ती बनाने जाती है। पहले मैं सोचती थी कि बेचारी को कितना तकलीफ है। राजेश की तरह समीर की भी अच्छी नौकरी रहती तो बेचारी को घर से बाहर निकलने की जरूरत नहीं पड़ती। एक बार मैंने यही बात उससे कही तो वह बोली - 'क्या करें जीजी मेरी किस्मत में तो यही लिखा है। जैसे-तैसे जिंदगी की गाड़ी खींचे चली जा रही हूँ।'

उससे तुलना करने पर अपने-आपको कितना खुश नसीब समझती थी। कितना तरस आता था उस पर। सुबह से गई रात भर बिजी रहती है। वो जितना बिजी मैं उतनी ही लीजर। करने को कुछ काम नहीं है। जो कुछ थोड़ा बहुत काम है वह भी मेइड सर्वेन्ट करके चली जाती है। .....समय काटे नहीं कटता है। उकताहट सी होती है इस लीजर पन से। .....क्या नहीं करती हूँ इस उकताहट से बचने के लिये .....सुमित्रा! किसी मामले में हो या न हो इस मामले में तो तू सचमुच लकी है। .....क्योंकी खाली पन का अहसास तुझे कभी न आया होगा। .....दिनभर जी तोड़ मेहनत करके रात में तू किस तरह घोड़े बेचकर सोती है। .....छाती उघड़ सी जाती है। .....साड़ी जांघों तक चढ़ जाती है। पर तुझे सुध ही कहाँ रहती है। सचमुच सुमित्रा तेरी इस नींद को देखकर मुझे ईर्ष्या

सी होने लगी है। मुझे सोने के लिये रात-रात भर कितना तड़पना पड़ता है, कितनी करवटें बदलनी पड़ती है .....बिना स्लीपिंग पिल के नींद ही नहीं आती है .....काश तेरे जैसी यह नींद मुझे एक दिन भी नसीब होती.....।

दम घुटा सा जा रहा है। दिल करता है बाहर आंगन में घूमूं। पर इतनी रात को? बाप-रे-बाप! यहाँ रात में उनकी अनुपस्थिति में यह खिड़की तक नहीं खोलने की हिम्मत है। पर लगता है खिड़की नहीं खोलूंगी तो शायद दम घुटने से ही मर जाऊंगी..... ऑखीर खोल ही देती हूँ। ठंडी हवा का एक झोंका बदन से टकराता है। चैन सी मिल जाती है। जिस तरह मैं बाहर निहार रही हूँ चाँद भी कमरे के अंदर निहारने लगा है। बाहर ठंड़ी हवा बह रही है। शादी होने तक गर्मी के मौसम में हम लोग किस तरह छत पर ही सोते थे। कितना मजा आता था। .....पर यह सब यहाँ नसीब कहाँ है .....यहाँ पर तो नसीब है घर्-घर् की आवाज करती कूलर की हवा ही।

फैक्टरी में मशीनों के चलने की गड़-गड़ की आवाज साफ सुनाई पड़ रही है। दिन में तो सुनाई ही नहीं पड़ता है। फैक्टरी की चिमनियों से निकलता डस्ट का एक घना सा बादल आकाश में आकाश गंगा की तरह बह रहा है।

राजेश को गये इतनी देर हो गयी है पर अभी तक कोई पता ही नहीं है .....भला यह भी कोई ड्युटी है। न वक्त न ठिकाना। सुबह साढ़े पाँच का सायरन हुआ कि इनकी ड्युटी शुरु हो जाती है। फोन-पर-फोन आने लगते हैं नाइट शिफ्ट की रिपोर्ट देने के लिये। फोन पर यब सब इंफर्मेशन गैदर करके इन्हें पहले मैनेजर-इंजीनियरिंग को बताना पड़ता है। इस के बाद जी.एम.

www.eTelangana.org

को। पर केवल रिपोर्ट से ही काम नहीं चलता है। प्रश्नों की बौछार सी होने लगती है। सबका समाधान करना होता है। इस काम से निवृत हो नहा-धोकर ताबड़-तोड़ तैयार होने तक छै पचास-छै पचपन हो ही जाता है। नास्ता करने का भी वक्त नहीं रहता है। साढे सात बजे ड्यूटी का वक्त है, परन्तु ये सात बजे ही चले जाते हैं।

किचन से बर्तन गिरने की आवाज आती है। जरूर यह उस काली बिल्ली की करतूत है।.....याद आता है दूध ठंडा होने के लिये रख दी थी।.....बाद में फ्रिज में रखना भूल गई.....भला अब जाकर फायदा भी क्या होगा।.....जूठा तो कर ही दी होगी.....।

जो भी मिला जल्दी-जल्दी मुंह में ठूंस लेता है। ठंड़ी चॉय मुँह में उंडेल लेता है। इनकी सख्त हिदायत है कि नास्ता लगाने के पहले ही चाय ठंडी होने देने के लिये सिन्क या वॉश बेसिन में रख दूँ। चाय पीने की इनकी इस आदत से मुझे सख्त विरोध था। व्यस्तता या लापरवाही-वश जब कभी चाय ठंडी होने के लिये नहीं रखती थी तो ये चिड़चिड़ा पड़ते थे, यह कहते हुए कि 'कितनी बार कहा कि पहले चाय ठंडी होने के लिये रख दिया कर पर तू तो समझती ही नहीं है।'

"समझती क्यों नही हूँ। पर यह भी कोई चाय पीने का तरीका है भला? चाय का असली मजा तो गरम-गरम चुस्की लेते हुए पीने में है।"

'तेरे को मजे की सूझ रही है और मेरा ड्युटी का वक्त हो गया है।' वह चिड़चिड़ाता।

'चौबीस घंटे तो फैक्टरी के लिये खटते ही रहते हो। पाँच मिनट देर से जाने पर कोई पहाड़ नहीं टूट पड़ेगा.....' भला मैं भी

कहाँ चुप बैठने वाली थी। चिड़चिड़ा पड़ती थी।

'रेसपांसिबिलिटी क्या चीज है भला तू क्या समझेगी।' कहते हुए वह चाय का प्याला पटक कर चले जाते थे।....परन्तु अब यह सब कितना कामन हो चुका है। अब तो किसी मशीन की तरह अपना काम करती चली जाती हूँ, न कोई झगड़ा, न कोई विरोध। लंच का सायरन बारह बजे होता है। परन्तु इनके घर पहुँचने तक साढ़े बारह, पौने एक हो जाता है। हाथ-मुँह धोकर खाना खाने के बाद थोड़ा कमर तानने की फुर्सत भी नहीं रहती है। डेढ़ बजे तक का वक्त है पर ये सवा एक बजे ही निकल पड़ते हैं। और शाम में .....पाँच बजे के सायरन पर घर पहुँचते आज तक नहीं देखा है इन्हें। कभी सात बजता है..... कभी आठ।.....कभी छः बजे घर आ गये तो समझो बहुत जल्दी आ गये। नहा धोकर डिनर लिये नहीं कि साढ़े नौ का सायरन हो जाता है। फिर वही सुबह वाली शिफ्ट रिपोर्ट का प्रोसेस। नाईट शिफ्ट में आने वालों को जॉब अलोकेट करके ये वो इंस्ट्रकशन देकर, फुर्सत पाने तक ग्यारह बज जाता है। पर इसके बाद सोये तो बीच-बीच में भी फोन - 'साब ये ब्रेक डाउन'..... 'सॉब वो ब्रेक डाऊन'.....इनकी इस ड्युटी से कितना परेशान हूँ। कभी लगता है फैक्टरी ही इनकी पत्नी है। मैं तो बस रखैल मात्र। चैन से दो मिनट बैठकर बातें करने की भी फुर्सत नहीं है।.....शाम में बाहर जाने का प्रोग्राम बनता है। ड्यूटि जाते वक्त वादा करके जाते हैं। परन्तु..... वो तो, वो तनु की पैदाइश के समय पेन कब का स्टार्ट हो चुका था परन्तु फैक्टरी में ब्रेक डाऊन के चलते रात में आठ बजे आकर हॉस्पिटल लेकर गये थे.....

दीवार घड़ी का कांटा टक्-टक्-टक्-टक् करता घूम

www.eTelangana.org

रहा है अपने ही सीमित दायरे में। उसे ही देखती रहती हूँ। एक चक्कर..... दो चक्कर..... चार चक्कर ..... आठ चक्कर .....। बस उसे ही निहारती रहती हूँ। गिनती करना कब भूल गई याद ही नहीं रहता है।

'हर वक्त फैक्टरी-फैक्टरी..... फैक्टरी-फैक्टरी, घर में एक बीबी है ..... उसकी कुछ इच्छायें हैं, कुछ अरमान हैं करके कभी सोचा है, तुम्हें फैक्टरी से फुर्सत मिले तब तो..... ऐसा था तो शादी ही क्यों की ? .....आराम से फैक्टरी में ही पड़े रहते चौबीसों घंटे' ..... कभी-कभी बौखलाहट में उन पर बरस पड़ती थी।

'कौन सी अपनी मरजी से रहता हूँ फैक्टरी में, क्या फैक्टरी में रहने का मेरे को कोई शौक है ? ..... वहाँ रोज-रोज नये-नये कितने प्रॉबलम्स आते है तेरे को क्या पता ? ..... वहाँ लेबर आउट आफ कंट्रोल होते जा रहे हैं। ..... उधर ऊपर से टारगेट पूरा करने का लगातार प्रेशर आता रहता है। .....रोज कुछ न कुछ प्रॉब्लम ..... भला मैं क्या करूँ ?' .....वह रूआंसा सा हो जाता था।

जब पहले-पहल इस घर में कदम रखी थी तो फोन देखकर कितनी खुश हुई थी। फूली नहीं समाई थी। अपने भाग्य को सराहने लगी थी। फोन कोई छोटे-मोटे आदमी के पास भला थोड़े होता है। 'राजेश इज रियली ए बिग ऑफिसर।' ..... वक्त बेवक्त फोन की घंटी बजते ही खुशी से दिल की घंटी बजने लगती थी।

पिछले महीने जब फोन किसी कारणवस आठ-दस दिन के लिए डेड हो गया था तो कितनी शांति थी घर में। काश ! यह फोन हमेशा-हमेशा के लिए डेड रहता ..... नाइट पेट्रोलिंग करने

वाले गोरखे के डन्डे पटकने की आवाज पास आती जा रही है। - इतनी रात में खिड़की के पास खड़े देखकर न जाने क्या सोचेगा। खिड़की बन्द कर देती हूँ। जाकर बेड पर लेट जाती हूँ, आँखे बन्द करके सोने की कोशिश करती हूँ। न जाने कितनी देर बिना हिले-डुले पड़ी रहती हूँ। परन्तु नींद का पता नहीं है। .....अब लगता है स्लीपिंग पिल लिये बिना काम नहीं चलेगा। सिरहाने मेट्रस के नीचे टटोलती हूँ। सीसी खाली है। -कोफ्त सी होती है। कल ही समाप्त हो चुकी है। आज मंगाना चाह रही थी परन्तु याद ही न रहा। अब मरो .....

शायद सेफ में एकाध पिल पड़ी हो। सारा सेफ छान मारती हूँ। सब तरह के टेबलेट है परन्तु केवल यही नहीं है। आकर धब्ब से सोफे पर बैठ जाती हूँ। तिपाई पर आज का न्यूज पेपर पड़ा है। ..... 'अमरीकी इराकी युद्ध में हजारों इराकी औरतें विधवा बनी' ..... 'पंजाब में चार उग्रवादी पुलिस की गोली के शिकार'..... 'पुलिस कस्टडी में और एक लॉकप डेथ' ..... कंपनी पेपर अलौंस क्यों देती है समझ में नहीं आता है। हेड लाइन्स तक देखने की इन्हें फुर्सत नहीं है ..... दुनिया में कहां क्या हो रहा है इससे इन्हें कोई मतलब ही नहीं रहा है। .....पिलानी टेक्नोलोजिकल इस्टीट्यूट का एक ब्रिलियंट स्टूडेंट..... एम.टेक, गोल्ड मेडालिस्ट। किस तरह इनकी दुनिया केवल फैक्टरी के इस छोटे से चहर दीवारी में ही सिमटकर रह गयी है।

हाँ फैक्टरी के सामने इनके जीवन का उद्देश्य ही भला क्या रह गया है। फैक्टरी में हैं तो फैक्टरी ..... घर में हैं तो फैक्टरी। न तो बीबी की तरफ देखने की फुर्सत न तो बच्चों की तरफ ध्यान देने का वक्त। ..... रेसिडेंशियल में डालकर तो मानों

www.eTelangana.org

बच्चों से छुटकारा ही पा लिया। .....घर पर रहकर पढ़ें तो रोज कुछ-न-कुछ प्रॉब्लम..... कभी ये होम वर्क कराओ..... कभी वो होमवर्क कराओ, कभी पेंसिल के लिए भागो, कभी पेन के लिए भागो। अल्टीमेटली डाइवर्सनऑफ काँसनट्रेशन। कंपनी एट्राक्टिव एजुकेशनल अलाऊँस दे रही है तो बच्चों को रेसिडेंशियल में डाल दिया। वही घर में रखकर पढ़ायें तो अलौंस नहीं। जैसे यह एजुकेशनल अलौंस नहीं बच्चों से पिंड छुड़ाओं अलौंस है। .....बच्चे पैदा ही न करें तो शायद और ज्यादा अलाऊंस देती।.....

तिपाई पर से सुमित्रा का खत उठा लेती हूँ। कुछ भी बोलो छोकरी पढ़ी लिखी तो बहुत कम है पर लिखती कितनी सुन्दर है, ब्युटीफुल हैंड राइटिंग।

सुमित्रा पिछली गर्मियों में जब यहाँ आयी थी तो यहाँ का नजारा देखकर किस तरह उसकी आँखे फटी-की-फटी रह गई थी..... चार कमरों वाला विशाल क्वार्टर ..... बीचों बीच बड़ा सा हॉल..... एटाच्ड् बॉथरूम,लेवाट्रिन ..... डाइनिंग हॉल..... किचन..... राऊंड रोटेटिंग डाइनिंग टेबुल..... गैस..... सोफा..... कलर टीवी..... वी सी आर ..... उसकी आंखे सचमुच किस तरह चोंधिया सी गयी थी। बोली थी -'दीदी तुम कितनी भाग्यशाली हों।'

और सचमुच इन चीजों के प्रति मुझमें भी कितना क्रेज था। यहाँ कॉलनी में हम लेडिसों में सामान इकट्ठा करने की होड़ सी है। .....जीवन में आये असंतृप्ति, सूनेपन और बोरियत का समाधान इन लक्जरी वस्तुओं में ही खोजते फिरते हैं।

.....''याद है सुमित्रा! बचपन में छुट्टियों बिताने के लिए कभी-कभी हम दादीजी के गाँव जाते थे। गाँव के बाहर तालाब के पास सूनसान में एक बहुत ही बड़ी पुरानी हवेली है। किसी समय

वह किसी जमींदार की हवेली थी। अब तो यह खंडहर सी बनी हुई है। ..... गाँव में यह बात प्रचलित है कि इसमें किसी प्रेतात्मा का निवास है। .....उसने ही जमींदार के पूरे खानदान को मार डाला। .....उसके पास से गुजरते हुए भी हम लोग थर-थर काँपते थे। हवेली से साँय-साँय की आवाज आती थी। जब कभी हम लोग खूब हल्ला-गुल्ला अथवा धूम-धमाका करते तो दादाजी हमें भूत बंगले में छोड़ आने की धमकी देते थे। बस किस तरह हमारी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती थी। कैसे हम दहशत से भर उठते थे। .....सुमित्रा! तू मान या मत मान यह चार बड़े-बड़े कमरों वाला क्वार्टर उस भूत बंगले से कम नहीं है। केवल दो जीवों के लिए इतना बड़ा क्वार्टर। .....जब वे नहीं रहते हैं तो किस तरह यह घर मुझे काटने दौड़ता है। कमरे सांय सांय करते हैं। ..... किसी प्रेतात्मा की तरह इस कमरे से उस कमरे में चक्कर काटती रहती हूं।''

घर्र्-घर्र् की आवाज करता कूलर उसी तरह घूम रहा है। बच्चों वाला कैलेन्डर कर्र्-कर्र् करता दीवार पर उसी तरह डोल रहा है। दरवाजे पर लगा पर्दा भी हवा में हिल रहा है। ..... कूलर की हवा सीधी चेहरे पर मार रही है। ..... बाल खुले हुए हैं। हवा में लहरा रहे हैं। .....

'दीदी अगले महीने हम लोग भी डेकोलम का डबल कॉट बेड खरीद रहे हैं'' ..... सुमित्रा ने अपने खत में लिखा है। सबकी देखा- देखी उसमें भी इन लक्जरी वस्तुओं के प्रति क्रेज बढ़ गया है।

मैं अपने बेड की तरफ देखती हूँ। पहले वाला डिस्पोज करके पिछले महीने ही बनवाया है, आठ हजार में। डेकोलम का बॉक्स टाइप डबल काट बेड। ..... उस पर कुर्लान के मेट्रेस आठ

www.eTelangana.org

इंच थिकनेस वाले ..... बांबे डाइंग का प्रिंट वाला बेड कवर ..... डांसिंग हॉर्स के डिजाइन बने मखमली पिल्लोस .....

अगर सुमित्रा इसे देखेगी तो किस तरह उसकी आंखे फटी-की फटी रह जायेगी। बेड खरीदने की उसकी खुशी ही समाप्त हो जायेगी। पर उस बेचारी को भला कैसे पता चलेगा कि इतना सुन्दर बेड रहकर भी भला फायदा क्या है जबकि उस पर सोने वाला ही नहीं है।

..... ट्रन ..... ट्रन ..... ट्रन ..... ट्रन ..... ट्रन -"हेलो डार्लिंग! ब्रेक डॉउन कुछ लम्बा खिंच गया है, मेरा इन्तजार मत करना।"

"ओ.के." फोन रख देती हूँ।

दीवार घड़ी की तरफ देखती हूँ ..... तीन बीस हो रहा है दोनों हाथ उठाकर लम्बी जम्हाई सी लेती हूँ और फिर अपने डबल कॉट बेड पर लेट जाती हूँ। सोने के लिये या तड़पने के लिये मुझे पता नहीं है।

डबल कॉट बेड का तीन चौथाई से ज्यादा हिस्सा खाली है। टक् टक् डंडा पटकता हुआ गोरखा क्वार्टर के सामने से गुजर रहा है। ..... तनु की गुड़िया की तरफ देखती हूँ। उदास आँखे मुझे ही निहार रही हैं।

❀ ❀ ❀

लोक सूचक अंक - ४
अप्रेल ९३

वापसी यात्रा

"बड़ी अजीब कहानी है इस आदमी की। प्रकृति ने कैसा खेल खेला है इसके साथ।" ..... संजय अपने सामने वाली सीट पर बैठे घुंघराले बालों वाले व्यक्ति की तरफ देखता हुआ सोचता है।

लगभग बाइस-चौबीस साल बाद अभी-अभी इस आदमी से मुलाकात हुई थी संजय की। यह आदमी यानी कॉलेज में उसका सहपाठी। कितना चुस्त लड़का था। सब उसकी कैसी दाद मानते थे। ..... विद्यार्थियों की कोई भी समस्या क्यों न हो, बेहिचक कैसे घुस जाता था प्रिंसिपल के ऑफिस में। .....

दुबला-पतला परंतु कसा हुआ बदन। ..... तीखे नाक-नक्श .....सिर पर काले घुंघराले बाल सीढ़ियों की तरह।.....

इन्ही घुँघराले बालों के कारण ही तो वह उसे पहचान सका था। उसे ट्रेन में देखकर उसे लगा था कि इसे कहीं देखा है, और उसके मुँह से अचानक 'श्रीनु' निकल गया था। हाँ उसका नाम श्रीनु ही तो था। 'श्रीनु' यानी 'श्रीनिवास'। पर सब उसे श्रीनु

www.eTelangana.org

कहकर ही बुलाते थे। श्रीनिवास ने आश्चर्य से उसकी तरफ़ देखा था, परंतु पहचान नहीं पाया था।..... चेहरे पर बल पड़ गये थे।

"श्रीनू ही है न?"

उसने हाँ में सिर हिलाया था।

मुझे पहचाना?

याद करने की कोशिश करता है।

'मैं तेरा दोस्त संजय..... ।'

'सं.....ज.....य.....' कुछ हिचकिचाते हुए उसके मुँह से निकला था।

'हाँ संजय'। कहता वह उठ खड़ा हुआ था। हाथ मिलाता हुआ आकर वह सामने वाली खाली सीट पर बैठ गया था।

संजय ने सोचा था कि इतने सालों बाद मिलने की खुशी में वह फूला नहीं समाएगा। चहक उठेगा। आकर जोरों से गले लग जाएगा। .....पर ऐसा कुछ नहीं हुआ था।

"कैसे हो?" ..... उसने पूछा था।

"ठीक हूँ। तू कैसा है?" संजय ने उसका प्रश्न उसे ही दाग़ दिया था।

'ठीक हूँ।' कहता वह खिड़की से बाहर झाँकने लगा था।

पेड़-पौधे, नदी-नाले सब पीछे भाग रहे थे।

"आजकल कहाँ है?" कुछ देर बाद संजय फिर उसे छेड़ता है।

"दिल्ली में"

"क्या कर रहा है?"

"एक प्लास्टिक बनाने वाली कंपनी में क्लर्क हूँ।"

उसके दिल्ली में होने की उड़ती खबर, एक मित्र के

जरिए उसे कभी मिल चुकी थी। उसके संबंध में यह बात भी उसे मालूम थी कि उसने अपने से उम्र में बड़ी एक विधवा क्रिश्चियन से शादी कर ली है।.....

"भाभीजी कैसी है?" पूछते हुए कुछ हिचकिचाया था।

"ठीक है?"

"और बच्चे?"

"ठीक है। दो लड़के हैं और एक लड़की। लड़की इंजनियरिंग कर रही है। बड़ा लड़का इंटर में है और छोटा दसवीं में.....।"

"बहुत अच्छा।"

संजय बहुत कुछ उससे पूछना चाहता था। बहुत कुछ उसके बारे में जानने की उत्सुकता थी। उसकी आप-बीती उसे मालूम थी। इसलिए इस संवेदनशील विषय पर बात करने से हिचक रहा था।

"घर जा रहा है?" अचानक फिर से उसने पूछा था।

जवाब में एक उदास-सी मुस्कुराहट श्रीनु के चेहरे पर मानो कह रहा हो - 'घर?'..... 'कैसा घर?'..... 'कौन सा घर?' ....'वह घर जहाँ पैदा हुआ था?'.....'खेल कूद कर बड़ा हुआ था?'.....'वह तो कब का उजड़ चुका है।'.....

जवाब में श्रीनु ने एक पत्र जेब से निकालकर उसे थमा दिया था।

उसने आश्चर्य से उस पत्र को इधर-उधर उलट-पलट कर देखा था। फिर पढ़ने लगा था। लिखा था-

'श्रीनू'

तुम्हारे पिताजी अब इस दुनिया में नहीं रहे। इस बात का

www.eTelangana.org

तुम्हें पता है या नहीं मुझे पता नहीं है। तुम्हारे जाने के बाद से एक दिन भी खुश नहीं रहे।..... हर पल अपने-आपको कोसते रहे।..... उन्होंने जाने अनजाने जो किया था उसके लिए अपने-आपको कभी माफ़ नहीं किया। इस पश्चाताप की आग में ही जलते हुए चल बसे। अपने अंतिम क्षणों में, मृत्यु के आग़ोश में जाते हुए भी उनके ओठों पर तुम्हारा ही नाम था।.....

वे अपने पीछे लाखों की संपत्ति छोड़ गये हैं। मैं ठहरी अकेली औरत। मुझसे सँभाला नहीं जा रहा है। रिश्तेदारों ने धीरे-धीरे उस पर क़ब्जा जमाना आरंभ कर दिया है। वैसे मेरा स्वास्थय भी ठीक नहीं रह रहा है।..... अल्सर, मधुमेह, रक्तचाप, एक बीमारी हो तो बताऊँ। दिल का दौरा भी पड़ चुका है। .....कब टैं बोल जाऊँ पता नहीं।.....

बहुत खोज-खबर के बाद तुम्हारा पता मिला है। यह भी सही है या नहीं, पता नहीं।..... अगर यह खत तुम्हें मिलता है तो आशा है कि आओगे और मुझे इस भार से बरी कराओगे।

– 'सावित्री'

पत्र पढ़कर वह उदास-सा हो जाता है। 'आई ऍम सॉरी' कहता है। जवाब में श्रीनू सिर कुछ हिलाकर छत पर ऊपर पंखे को देखने लगता है।

'तो यह उस घटना के बाद से आज तक घर नहीं गया है। तेईस-चौबीस साल तो हो ही रहे हैं उस घटना को हुए। बाप रे इतना लंबा अंतराल।..... कितना दर्द छिपा रखा है इसने अपने सीने में, ऊपर से एकदम शांत-सा लगने वाला आदमी।' .....संजय मन-ही-मन सोचता है। लाखों की जायदाद की भी परवाह नहीं की। एक बार घर से निकला तो इतने सालों बाद वापस लौट रहा

है। वह भी इस विषम परिस्थिति में।

गाड़ी ऑउटर सिग्नल के पास रुक गयी है। शायद लाइन क्लीयर नहीं है। सूरज पहाड़ी के गर्भ से निकलने के लिए कसमसा रहा है। प्रसव वेदना की लाली वहाँ व्याप्त है। पहाड़ी के गर्भ से रिसता हुआ द्रव नाले के रूप में मैदान में प्रवाहित हो रहा है।

संजय अपने कॉलेज के दिनों में पहुँच जाता है। बी.कॉम. में दोनों सहपाठी थे। वह सोचता है कि अगर श्रीनू उसकी कक्षा में नहीं होता तो उसका क्या हाल होता। वह बहुत ही सीधा-सादा लड़का था और अपनी पढ़ाई से ही मतलब रखता था। ऊपर से शर्मिला स्वभाव। दूसरे लड़के उसे किताबी कीड़ा कहकर परेशान करते थे। परन्तु यह तो श्रीनू ही था जिसने उसकी तरफ दोस्ती का हाथ बढ़ाया था। उसके कारण ही तो वह अपनी पढ़ाई पूरी कर पाया था।..... दोस्ती के बाद उसने उस पर कभी आँच नहीं आने दिया था। एक मक्खी तक उसने उस पर बैठने नहीं दिया। उसे उसके साथ सहानुभुति थी। .....पर इसी तरह की सहानुभुति तो इसे उस लड़की से भी थी जिसका जिक्र वह उससे अक्सर किया करता था। .....वह लड़की जो उसके साथ दसवीं कक्षा तक पढ़ी थी। जिसका बाप बचपन में ही चल बसा था और माँ लक़वा-ग्रस्त होकर मर चुकी थी..... उनके गाँव के पास के गाँव में ही रहती थी।..... न कोई ज़मीन, न कोई जायदाद।..... न कोई आगे न पीछे बस एक मामा को छोड़कर। .....उसकी सहानुभुति धीरे-धीरे प्यार में बदल गयी थी। उसने उससे वादा किया था कि पढ़ाई समाप्त होते ही वह उससे शादी करेगा। .....उसकी दृढ़ निश्चयता पर उस लड़की को ही नही, संजय को भी विश्वास था।

वह औसत दर्जे का विद्यार्थी था। खेल-कूद में उसकी

www.eTelangana.org

रुचि थी। परंतु ज्यादा झुकाव राजनीति की तरफ ही था। कॉलेज की राजनीति में वह खुलकर हिस्सा लेता था।

गाड़ी के स्टेशन पर रुकते ही दोनों चाय पीते हैं।..... श्रीनू जेब से सिगरेट का पैकेट निकालकर उसकी तरफ बढ़ाता है परंतु वह मना कर देता है।

"अभी तक तू नहीं बदला है।" चेहरे पर कुछ मुस्कुराहट लाता हुआ कहता है।

अब जाकर श्रीनू कुछ खुला था। इन बातों में पहली बार संजय को अपनापन लगा था। 'तू' का संबोधन उसे अच्छा लगता है। अब तक तो जो भी बातें हुई थी उनमें असहजता थी। एक दूरी थी। पर ये बातें कॉलेज के उस सहपाठी की बातें थी।.....बिल्कुल वही अंदाज..... वही मुस्कुराहट। कोई भी बदलाव नहीं, इस मुस्कुराहट में। ओठों के एक कोने से मुस्कुराना। पैकेट से सिगरेट निकालकर वह पीने लगता है। सिगरेट का धुआँ उसे नहीं जमता है। और कोई होता तो मना कर देता पर श्रीनू को मना नहीं कर पाता है।.....

कॉलेज की लाश वाली घटना तो संजय अभी तक नहीं भूल पाया है।..... कॉलेज के पिछवाड़े झाडियों में पड़ी हुई लाश। .....बाप रे! पेट में छुरा भोककर बेरहमी से की गयी थी यह हत्या।

श्रीनू बचे हुए सिगरेट के टुकड़े को खिड़की से बाहर उछाल देता है। गाड़ी ने तेजी पकड़ ली है। पेड़ पौधे नालें सभी तेजी से भाग रहे हैं। रात में बारिश हुई थी शायद। खेतों की ज़मीन गीली है। पटरियों के किनारे गड्ढ़े मटमैले पानी से भरे हुए हैं।

इस लाश ने ही तो श्रीनू के जीवन को बदलकर रख दिया था।..... वह छोकरा शहर के एक धनी सेठ के यहाँ मुंशीगिरी

करता था। बहुत ही लंबा चौड़ा कारोबार था उस सेठ का। लोगों का अनुमान था कि सेठ ने ही उसकी हत्या करवायी थी।..... कुछ लोगों का मानना था कि वह सेठ के कालाबाज़ारी के बारे में सब कुछ जानता था। कहीं उसका भंड़ाफोड़ न कर दे इसी डर से उसने उसकी हत्या करवा दी। कुछ लोगों का यह भी मानना था कि सेठ का जाली नोटों का धंधा था। उस छोकरे को इस बात का पता चल गया था। कहीं पर्दाफाश न कर दे इसलिए उसकी हत्या कर दी थी।

.....खैर कारण जो भी रहा हो लोगों का पक्का अनुमान था कि हत्या सेठ ने ही करवायी थी।

बस विद्यार्थी उत्तेजित हो उठे थे। आपातकालीन सभा बुलायी गयी थी। सभा में प्रस्ताव पास किया गया था कि इस जुल्म के खिलाफ़ आवाज उठाना चाहिए।..... कक्षाओं का बॉयकाट हुआ। विद्यार्थी समुदाय सड़क पर आ मया। नारों से सारा शहर गूंज उठा। .....और इस सबका नेतृत्व कर रहा था श्रीनू।

सेठ के राइस मिल पर धावा बोल दिया गया था। .....पुलिस आयी। आँसू गैस के गोले छोड़े गये। .....लाठी चार्ज हुआ। .....जवाब में दूसरी तरफ से पथराव। .....दोनों ओर से कई तरह की हरकतें।

और इसके साथ ही पुलिस के रिकॉर्ड में नक्सलाइट के रूप में उसका नाम दर्ज हो गया था। .....पुलिस हाथ-धो कर पीछे पड़ गयी तो भूमिगत हो गया था।

और यहीं से उसके जीवन की पटरी की दिशा बदल गयी थी। कॉलेज छूट गया। .... घर जाना बंद हो गया। .....उसके भूमिगत कार्यकलापों की खबर कभी-कभी मिल जाती थी संजय को, परन्तु व्यक्तिगत रूप से उसकी मुलाकात कभी नहीं हुई।

www.eTelangana.org

जब वह दंडकारण्य के ट्रॉइबल बेल्ट में काम कर रहा था तो एक दिन पुलिस कांबिंग में गिरफ्तार हो जेल की सीकचों में बन्द हो गया था।.....

बाप ने उसे छुड़ाने के लिए खून-पसीना एक कर दिया था। परन्तु छुड़ा न सका था।

श्रीनु वह पत्र निकालकर फिर से पढ़ने लगता है। ट्रेन की गति के साथ ही उसका बदन एक लय में हिल रहा है और साथ ही वह पत्र भी। चेहरे पर उदासी। संजय की तरफ देखता कहता है- "मैं अपने माँ-बाप का एकलौता संतान था। माँ तो बचपन में ही चल बसी। घर में पिताजी और मैं।..... कितना प्यार करते थे मुझे। कितनी उनकी इच्छा थी कि पढ़-लिख कर बड़ा आदमी बनूँ।..... पर उनका सपना सपना ही रह गया।"

संजय कुछ झुक कर सहानुभूति में हाथ उसके घुटने पर रखता है।

"जब जेल में था तो जब भी मौका मिलता पिताजी मुझे मिलने चले आते थे। जेल से बाहर घण्टों इन्तजार करते थे। जब वह लौट रहे होते, उनकी आँखों में आँसू होते थे।....."

और श्रीनु की आँखें भी आँसुओं से डबडबा आयी थीं। "एक बार जब वे आये तो बोले थे -'बेटा अकेला पड़ गया हूँ सोचा था तुम्हारी शादी कर दूँगा तो बहू और बच्चों से घर कुछ चहक उठेगा। परन्तु वह दिन कब आयेगा पता नही।'..... वे दरवाजों की सीखचों को बहुत देर तक निहारते रहे थे। लगा, असमन्जस में हैं। कुछ कहना चाहते हैं। पर कह नहीं पा रहे हैं।"

श्रीनू कुछ देर रुकता है। खिड़की की सीखचों को कुछ देर निहारता रहता है। ट्रेन साइरन देती हुई बढ़ती हुई चली जा रही

है। पटरियों पर बिछी गिट्टियाँ उछल .....सी रही हैं। नीचे ढलान है। नीचे गहराई में झाँकता हुआ वह फिर कहता है- "बहुत देर बाद वे बोले - 'बेटा, अब अकेलापन मुझसे सहा नहीं जाता। सूना घर काटने को दौड़ता है। लोगों के बीच दिन का वक्त तो किसी तरह हँस-बोल कर काट लेता हूँ परन्तु रात.....।' फिर अन्त में हिचकिचाते हुए बोले थे -'बेटा अगर तेरी अनुमति हो तो तेरे लिए एक माँ लाना चाहता हूँ।'..... यह कहते हुए मेरी आँखों का सामना नहीं कर पाये थे। उन्हें डर था कि न जाने किस तरह की प्रतिक्रिया मैं जताऊँगा।"

आगे वह बताता है, पिताज़ी के मुँह से दूसरी शादी की बात सुन जो खुशी उस समय उसे हुई थी वह बयान करना मुश्किल है। .....माँ बचपन में ही चल बसी थी। वे चाहते तो उस वक्त ही शादी कर सकते थे, परन्तु उन्होने मेरे लिए, केवल मेरे लिए शादी नहीं की थी। मैं बड़ा हो चुका था। मैंने अपना मार्ग स्वयं चुन लिया था। .....कम से कम इस शादी के कारण उनके जीवन में फिर से कुछ बहार तो आती। .....मैंने कहा तो कुछ नहीं, पर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर धीरे से दबाया था। यह मेरी सहमति थी।"

वह बताता है कि 'अदालत में उसके विरुद्ध कोई सबूत न मिलने से वह रिहा हो गया था। वहाँ से वह सीधा घर के लिए रवाना हुआ था। .....वह सोच रहा था, अचानक उसे देखकर पिताजी कितने खुश होंगे।..... वह अपनी नयी माँ को भी देखना चाहता था। खेत-खलियान पार करता हुआ वह घर पर पहुँचा था। नौकर ने बताया कि पिताजी किसी काम से बाहर गये हुए हैं और घर पर केवल उसकी नयी माँ है। नयी माँ को देखने की उत्सुकता में उसने दरवाजा खटखटाया। पर दरवाजे के खुलते ही मानों उस

www.eTelangana.org

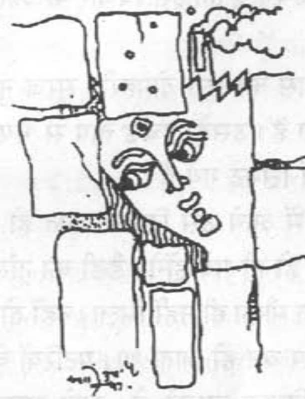
पर घड़ों पानी गिर पड़ा था। सामने 'सावित्री' खड़ी थी। वही 'सावित्री' जिससे उसने प्यार किया था। शादी करने का वादा किया था। उसकी अपनी 'सावित्री।'

उसे समझ में न आया था कि वह सपना है या सच। .....होश-हवास खो गया था उसका। परुन्तु दूसरे ही क्षण होश में आ वह वहीं से उसी तरह लौट पड़ा था। .....आज चौबीस वर्षों बाद फिर से लौट रहा है।

❀ ❀ ❀

दक्षिण समाचार

महादानव



(नोट : काफी समय पहले अंग्रेजी में एक फिल्म आयी थी - 'गॉडजिल्ला'। गॉडजिल्ला यानी 'महादानव'। इतना बड़ा कि जब वह समुद्र में खड़ा हुआ तो समुन्दर का पानी उसके घुटनों तक था। जब टोक्यो शहर में प्रवेश करने लगा तो चारों और त्राही-त्राही मच गयी। सैंकड़ों लोग उसके पाँवों के नीचे कुचल कर मर गये। सैंकड़ों को अपने हाथों में मसल कर मार डाला। जब वह चलता तो धरती काँपने लगती।....... भोपाल त्रासदी के माध्यम से साम्राज्य वादी शक्तियों को इस गॉडजिल्ला के रूप में दर्शाने का प्रयत्न किया गया है इस कहानी में।)

जंगल के बीचों-बीच फुफकारती ट्रेन अपने गम्य की ओर बढ़ी चला जा रही है। वह खिड़की से बाहर झांकती है। घुमावदार पहाड़ियों पर इंजन भी दिखलाई दे रहा है और पीछे के

www.eTelangana.org

डिब्बे भी। उसे लगता है यह ट्रेन नहीं बल्कि एक भारी-भरकम अजगर है जो अपने बदन को बल देता हुआ रेंग रहा है और वे सब उसी के गर्भ में समाये हुए हैं। इस विचार के आते ही उसका दम घुटने लगता है।

बैसाख मास की भरी दोपहरी। सूरज नुकीले बाणों की सैय्या पर लेटा हुआ है। उसके प्रचंड ताप से भयभीत हो वृक्ष के छाये अपने-आप में सिमट गये हैं।

इस रास्ते में आये उसे कितना वक्त हो गया है? करीब दस-बारह साल तो हो ही गये होंगे। डैडी का ट्रांसफर हो जाने से इस रास्ते में आने का मौका ही नहीं मिला। नहीं तो पहले छः-सात महीने में एकाध ट्रिप बन ही जाता था। पटरियों के दोनों ओर के सघन जंगल उसे कितना लुभाते थे। इतने सघन कि सूरज के तीक्ष्ण-से-तीक्ष्ण बाण भी उसे भेद सकने में असमर्थ हो आत्म समर्पण कर देने पर मजबूर हो जाते थे। जंगल के आरंभ होने से लेकर खिड़की से चिपटी बैठी रहती तो उसकी सीमा समाप्त होने पर ही हटती थी। जंगल के बीच यहाँ-वहाँ पानी से लबालब भरे पथरीले नाले। गाड़ी से उतरकर किसी हिरणी के बच्चे की तरह चौकड़ी भरने का मन करता था उसका।

पर अब-? अब तो इस जंगल की हालत किसी विधवा सी हो गयी है। इसकी हालत देखकर उसे रुलाई सी आ जाती है। सारे जंगल में सूरज की किरणों ने अपना साम्राज्य बिछा दिया है। नाले ठूंठ से लग रहे हैं। जंगल का घनापन न जाने कहाँ गायब होगया है।

उसका कंठ सूख चला है। थर्मस का ठंड़ा पानी कंठ में उंड़ेलती है। गट्-गट्-गट्-गट्-। कुछ राहत मिलती है। पर यह

ठंडापन गर्म हवा के थपेड़ों में, गर्म तवे पर पड़ने वाले छीटों की तरह क्षणों में फुर्र हो जाता है।

उसका चेहरा सागवन के सूखे पत्ते की तरह खर-खर हो चला है। सर के बाल कटीली झाड़ियों में परिवर्तित हो गये हैं।

"बेटी तू थोड़ा आराम कर ले न?" बगल में बैठी माँ कहती है।

"मैं ठीक हूँ मम्मी। मेरी फिकर मत कर। तू सो जा।" वह जवाब देती है।

डैडी ऊपर वाले बर्थ पर लेटे हुए हैं। उसे मालूम है दोनों बारी-बारी से जागते हुए पिछली रात से उसकी निगरानी कर रहे हैं। उन्हें भरोसा दिलाने के लिए अपना बर्ताव जितना भी सहज हो सके बनाने का प्रयास करती है वह।

इस जंगल में भला इतना बदलाव कैसे आ गया? जब भी उनका इस रास्ते में आने का कार्यक्रम बनता वह कैसे खुशी से उछल पड़ती थी। मन कैसे विहंगों की तरह जंगल के ऊपर खुले आकाश में विचरण करने लगता था। ऊपर विस्तृत आकाश और नीचे हरी-भरी धरती। उसे लगता मानों वह रेलगाड़ी में नहीं बल्कि जंगल के बीचों बीच बहती नदी में प्रयाण कर रही है।

वह महसूस करती है, जंगल और उसका सचमुच कुछ अंतरंग संबंध है। एक समय यह जंगल कितना हरा-भरा था गदराये बदन वाली किसी नवयवना की तरह, और वह थी एक अल्हड़ बालिका। पर अब? अब तो दोनों एक ही हालत में पहुँच गये हैं।

खट् की आवाज से ट्रेन रुकती है। जंगल में भला ट्रेन क्यों रुक गयी? कहीं कुछ गड़बड़ तो नही हैं? जंगल में दूर कहीं

www.eTelangana.org

सूखे पत्तों की खड़खड़ाहट। खरगोश की तरह चौकन्ने हो उसके कान खड़े हो जाते हैं। जरूर किसी भारी-भरकम कदमों की चलने की आवाज है। धम्-धम्-। धरती में कंपन सी होने लगी है। विहंग दिशा विहिन होकर आकाश में उड़ने लगे हैं। जंगल में जानवर भी बिदककर इधर-उधर भाग रहे होंगे शायद। वह कांप सी उठती है।-खूंखार शेर को देखकर हरिणी की तरह हो जाती है उसकी दशा।

'-अब क्या करे? चीख पड़े जोर से? नहीं-नहीं। फिर क्या करे?'

-डैडी ऊपर वाले बर्थ पर लेटे हुए हैं। गहरी नींद में है। मम्मी को शायद उसकी दिमागी हालत पर भरोसा आ गया है। इसलिए वह कुछ निश्चिंत सी हो उसकी बगल में बैठी ऊँघ रही है। '-तो क्या उन्हें उठा दे?-'

सहमी सी दबी आवाज में चीख गाड़ी फिर से रेंगने लगती है, आग को देखकर भयभीत होने वाले सर्प की तरह। उसकी कुछ जान में जान आती है। पटरियों पर काम करने वाले आठ-दस मजदूर हाथों में शॉवल (चमच) लिए पटरियों की बगल में ट्रेन के गुजरने का इंतजार करते खड़े हैं। एक आदमी हरी झंडी दिखला रहा है।

'अरे-अरे! भागो-भागो। -गॉडजिल्ला आ रहा है।' कहती जोर से चीखकर वह उन्हें आगाह करना चाहती है परन्तु चीख कंठ में ही फंसकर रह जाती है।

उसे लगता है इस गॉडजिल्ला ने ही इस जंगल को तहस-नहस करके रख दिया है। इसे उजाड़ कर रख दिया है। पानी से लबालब भरे नालों को, रेती और कंकरों में बदलकर रख दिया है,

ठीक उसी तरह जिस तरह उसने उस रात उसके अपने शहर को मुर्दाघर में परिवर्तित करके रख दिया था।

वह पटरियों पर काम करने वाले मजदूरों के बारे में सोचती है। उनके चेहरों पर तो भय का कोई निशान ही नहीं दिखलाई दिया। उन्हें गॉडजिल्ला का कोई डर नहीं है या फिर उसके बारे में उन्हें कुछ पता ही नहीं है? अगर वह आ गया तो...? क्या करेंगे? - कहाँ भागेंगे? उभरी हुई हड्डियों वाले मजदूरों का चेहरा एक-के-बाद एक उसके सामने आता है। इन चेहरों पर तो सब कुछ लुट जाने वाले व्यक्तियों के चेहरों का सा भाव है। उसे लगता है मानों ये सब चेहरे उससे कह रहे हों - जब हमारा सब कुछ लुट गया है तो भला गॉडजिल्ला हमारा और क्या बिगाड़ लेगा। अजीब भीकट किस्म के इंसान हैं ये लोग। उसे उन मजदूरों से ईर्ष्या सी होने लगती है। इतने सुन्सान में भी कितनी निडरता से रह रहे हैं। अगर उनकी नीडरता का एक छोटा सा अंश भी उसमें रहता तो कितना अच्छा होता। एक समय था जब उसमें उत्साह-ही-उत्साह भरा रहता था। जंगल में लगी आग की तरह उसका दिल भी दहकता था। पर अब- ? अब तो वह बुझी हुई राख मात्र बनकर रह गयी है। गॉडजिल्ला ने तो.....

नहीं उसे गॉडजिल्ला के बारें में नही सोचना चाहिए। कदापि नहीं सोचना चाहिए। नहीं तो फिर से उन्ही सब यातनाओं की पुनरावृत्ति। उन यातनाओं की याद आते ही कांप उठती है। ओफ!ओ! कितनी भयंकर यातनायें। बिजली के झटकों की याद आते ही उसका सारा बदन झनझना उठता है। अब भी तो वह इन्हीं यातनाओं के दौर से गुजरकर मेंटल हॉस्पिटल से डिस्चार्ज होकर ही तो लौट रही है।

www.eTelangana.org

गर्म हवा के तेज थपेड़े मार रहे हैं। सागवान के सूखे पत्तों की खरखराहट महसूस करती है वह चेहरे पर। जरूर यह गॉडजिल्ला के मुंह से निकलती आग की लपटों का ही प्रभाव है। इन लपटों ने ही तो उस रात-

हाँ रात्रि का गहन सन्नाटा ही तो छाया हुआ था। बिस्तर में दुबकी पड़ी हुई थी वह। 'मंजुला उठो'-'मंजुला उठो', कहकर डैडी का जोर-जोर से झिंझोडना, घबराहट में उसका बिस्तर पर उठकर बैठ जाना, मामला क्या है कुछ भी समझ में न आना- 'भागो'-'भागो' कहते डैडी का घबराकर चीखते हुए हाथ पकड़कर खींचना, बदहवास सा उठकर उसका भी बाहर की तरफ भागना.....

उसका बदन पसीने से तथपथ सा हो जाता है। माथे पर पसीने की बूंदे फूट पड़ती हैं। रुमाल से पोंछती है। लगता है वह गश खाकर गिर पड़ेगी। माँ बगल में बैठी ऊँघ रही है। वह भी सर पीछे की ओर टिका आँखे बन्द कर लेती है।

बाहर तो एक अलग ही शोर-शराबा था। सारा शहर जाग गया था। लोग बेतहाशा सड़क पर भागे जा रहे थे। वह नाइटी में थी और पापा पैजामा बनियान में। पर कपड़ों की सुध भला किसे थी। पांवों में चप्पल तक न थीं। जिस हालत में थे उसी हालत में लोंगों के साथ भागने लगे थे।

लोगों की भीड़ में बेतहाशा वे लोग भी भागे जा रहे थे। क्या हुआ? क्यों इस तरह भाग रहे हैं? कुछ भी पूँछने की फुर्सत उसे नहीं थी और न ही किसी को बताने की। उसे लग रहा था हो न हो, गॉडजिल्ला ही शहर में घुस आया है और उनके पीछे पड़ गया है। अपनी भारी-भरकम पावों से उन्हें अब कुचला-तब कुचला। उसे मुट्ठी में पकड़कर अब पिचकाया तब पिचकाया।

उसका दम फूल रहा था, पर उसका भागना जारी रहा। भागते - भागते बेहोश होकर गिर पड़ी थी। बस यही उसे याद रहा..... इसके बाद क्या हुआ उसे कुछ भी पता न था।

अभी-अभी भागकर आने की तरह वह हांफने सी लगी थी। दम फूलने सा लगा था। अच्छा हुआ मम्मी ऊँघ रही है और पापा भी ऊपर वाले बर्थ पर लेटे हुए हैं। सामने की सीट पर बैठा कुछ लम्बी नाक वाला गोरा सरदार अपनी बच्ची को गोद में लिटा थपकी देता हुआ सरदारनी से बतिया रहा है। उन्हें देखकर उसे कुछ ढाढस सा होता है।

दूसरे दिन तो सारा शहर मुर्दाघर बन चुका था। जहाँ देखो वहीं लाशें। आदमी औरतें, बूढे और बच्चों की लाशें। जानवरों की लाशें। सारा शहर सांय-सांय का रहा था और इस वातावरण को और भयावह बना रहे थे आकाश पर मंडराते चील और गिद्ध...। उसकी सोच अब भी जारी है.....

हाँ गॉडजिल्ला यानी महादानव। बंबई के मिनरवा टॉकीज में ही तो देखा था न अपनी सहेलियों के साथ जब वह बी.ए. फाइनल में एक्सकर्सन पर गयी हुई थी। बाप रे बाप कितना भयानक था कितना विकराल था। जब समुंदर में उठकर खड़ा हुआ था तो शांत और स्थिर पानी में किस तरह उथल-पुथल मच गयी था। जमीन पर चलने लगा तो धरती कांपने लगी थी। ऐसा लगने लगा था मानों प्रलय ही आ गया हो। उसके पांवों के नीचे एक बार में ही सैकड़ों लोग कुचलकर दम तोड़ रहे थे। मुँह से निकलती लपटों से मीलों दूर खड़े लोग भी झुलसकर दम तोड़ रहे थे।

कितना पिन ड्रांप साइलेंस हो गया था हाल पूरा। टोकियो

www.eTelangana.org

शहर की गगन-चुंबी इमारतें तो उसके लिए माचिस की डिबियाँ थीं।

इंटरवेल में जब वे बाहर आये थे तो रमा ने चाय की चुस्कियों के बीच पूछा था- 'अगर गॉडजिल्ला सचमुच हमारे सामने आ जाय तो तू क्या करेगी रे ?'

'क्या करूंगी ? .. उसका एक हाट किस् ले लूंगी।' उसने चट् जवाब दिया था और सारी सहेलियाँ खिलखिला कर हंस पड़ी थी। कितनी रोमांटिक थी वह उस वक्त। पर अब. . . ?

उस समय उसे क्या पता था कि अंग्रेजी पिक्चर का यह फिक्सन, यह काल्पनिक चरित्र कभी सच भी बन सकता है।

जब उसे होश आया था, डैडी ने कहा था -'बेटी ईश्वर का लाख-लाख शुक्र है गैस हमारी तरफ नहीं बहा था। वह उल्टी दिशा में बहा था। हम तो बस डरकर भाग रहे थे।'

इस हादसे के प्रभाव से उबरने के लिए उसे कुछ वक्त लगा था। मम्मी, डैडी ने उसके उपचार और देख भाल में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। उन्हे अपनी चिंता न थी। चिंता थी तो केवल उसकी। उनकी इकलौती बेटी जो ठहरी अगर उसे कुछ हो जाय तो भला वे कैसे जी सकेंगे ?

और वह बिस्तर पर पड़ी किसी के इंतजार में छटपटा रही थी। किसी का स्पर्श पाने को बेताब थी। गेट की तरफ दृष्टि लगाये सूनी आँखो से उसका इंतजार करती रहती। उसके अब तक न आने की खीझ और नाराजगी भी। एक अधिकारिक भाव की खीज और नाराजगी। अपने से उसका थोड़ा भी विमुख होना वह कदापि बरदास्त नहीं कर सकती थी। . . . . और वह आया था। तपती धूप के बाद की पहली बौछार की तरह। सारी मर्यादायें

तोड़कर वह उससे लिपट गयी थी। फफककर रो पड़ी थी। उंगलियों के पोरों के कोमल स्पर्श ने उसके तपते माथे पर चंदन का शीतल लेप सा लगा दिया था।

पहली मुलाकात कब हुई थी उससे ? उस वक्त ही न जब ठंडी पुरवाई का स्पर्श उसे गुदगुदा रहा था। मन के किसी कोने में सोते फूट रहे थे।

वह यानी उमेश कुमार . . . . . . चार्टर्ड एकाउंटेंट। डैडी के दफ्तर में ऑडिटिंग के सिलसिले में आया करता था।कभी कभी घर पर भी आया करता था। शुरू में औपचारिक बातें होती किन्तु बाद में औपचारिकता का स्थान घनिष्टता ने ले लिया था।

. . . . . और उससे मुलाकात ने एक बवंडर सा ला दिया था। उसके दिल के शांत समुंदर में उथल-पुथल मच गयी थी। बड़ी-बड़ी लहरें उठ-उठकर पूरे आवेग से किनारों की सख्त चट्टानों से टकराने लगी थी।

पर अचानक सब कुछ शांत हो गया। समुंदर का उथल-पुथल, लहरों का आवेग सभी कुछ।

ट्रेन एक सुरंग से गुजरने लगी है। घन्-घन्-घन्-घन् की घुटी हुई आवाज। घुप्प् अंधकार। उसे लगता है मानों अजगर उन्हें अपने बिल में लिये चला जा रहा है।

इस हादसे के बाद दस-पंद्रह दिनों के अंतराल से उमेश जरूर उससे मिलने आता। वह भी बेताबी से उसका इंतजार करती। उसे देखते ही चहक उठती। उसके पुराने दिन फिर वापस आ गये थे। वे सैर-सपाटे के लिए अक्सर पार्क में या फिर नदी किनारे जाया करते। . . . . और कभी इस मुर्दा शहर की सरहद से बहुत दूर एकांत में अपने भावी जीवन के सुनहरे सपने बुन रहे होते।

www.eTelangana.org

पर उस दिन जब वह आया था तब से ही उदास लग रहा था। दोनों पार्क में बैठे हुए थे। वह एकदम गुमसुम था। 'एंडरसन मुर्दाबाद' . . . 'हम अपनी मांगे लेकर रहेंगे' . . . 'यूनियन कार्बाइड मुर्दाबाद-मुर्दाबाद' . . . 'मुआवजा लेकर रहेंगे-लेकर रहेंगे'- के नारों के साथ इस मुर्दा शहर के कंकालों की एक विशाल रैली बगल से गुजर रही थी। और इस जन-समुन्दर से एक बूँद की तरह एक कंकाल छिटककर पार्क में आ गिरा था। दम फूल रहा था और दोनों हाथों से सर पकड़ा उकड़ूं बैठा हुआ था। . . . हड्डियों के ढांचे पर चमड़े की पतली सी पर्त मात्र। वे दोनों आकर उसके सामने खड़े हो गये थे। अचानक उसने चेहरा उठाया था। वह थर्रा सी गयी थी। बकरे के भुने जले हुए सर की तरह का विकृत चेहरा। . . . अंदर तक कोटरों में धंसी हुई आँखे। वह वहाँ और न रुक सकी थी।

न जाने कितनी देर तक दोनों गुमसुम रहे थे।

"गैस ने लोगों की क्या हालत कर दी है।" बहुत देर बाद मौन को तोड़ते हुए वह फुसफुसाया था और भी न जाने क्या-क्या कहता रहा था, परन्तु वह सुनने की हालत में न थी। कुछ अंतराल के बाद उसने हिचकिचाते फिर कहा था - 'सुना है गैस से प्रभावित गर्भवती स्त्रियों के होने वाले बच्चों पर भी इसका प्रभाव पड़ सकता है?'

वह और कब तक मौन साधे बैठी रहती। न चाहते हुए भी उसने जंवाब में कहा था - 'हाँ बिल्कुल ठीक सुना है तुमने नवजात शिशु लंगड़े-लूले, अंधे-काने हो सकते हैं या फिर इससे भी खतरनाक बीमारी से ग्रस्त हो सकते हैं।' समाचार पत्रों में पढ़कर उसने जो जानकारियाँ हासिल की थी वह सब बता दिया

था उसने।

कुछ देर तक हाथ में पकड़े समाचार पत्र पर पेन से आड़ी-टेढ़ी रेखायें खींचता रहा था और फिर उसी बात को आगे बढ़ाता हुआ बोला - 'सुना है इससे प्रभावित औरतों के भविष्य में पैदा होने वाले बच्चों पर भी यह प्रभाव पड़ सकता है।'

'हाँ पड़ सकता है। बहुत संभावना है। वैज्ञानिकों की यही राय है।' समाचार पत्रों में पढ़ी हुई बातें फिर से दुहरा दी थी उसने।

हर बार की तरह उस शाम भी विदा करने उसे, स्टेशन पर गयी थी। उसने महसूस किया था कि वह बार-बार उससे कुछ कहने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु न जाने क्यों कह नहीं पा रहा है।

गार्ड ने हरी बत्ती दिखला दी थी। वह उसके पास नीचे प्लेटफार्म पर ही खड़ा था। बोला- 'मंजुला! घर वालों को डर है कि . . . .'

गाड़ी के चलकर, अचानक चैन खींच देने से रुक जाने की तरह रुक गये थे उसके शब्द।

'क्या डर है उमेश?' कुछ न समझ उसने आतुरता से पूछा था।

'यही कि भविष्य में तुम्हारे होने वाले बच्चों पर भी..' कहीं. . .।'

गार्ड ने सीटी दी। उसे लगा मानों सीटी उसके कानों को भेदती हुई निकल गयी। सुन्न सी हो गयी थी। क्या कहे कुछ न सूझा था उसे। पटरी से नीचे उतरते ट्रेन से निकलते आवाज सी उसके मुंह से निकला था - 'पर गैस तो हमारे क्षेत्र में आई तक

www.eTelangana.org

नहीं थी। वह तो उल्टी दिशा में बही थी। और हमारा घर तो गैस रिसने वाले स्थान से कई मील की दूरी पर है। . . . हम तो बस उस रात डरकर भाग रहे थे।'

'मुझे मालूम है मंजुला। मैने भी उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की है। पर वे लोग किसी तरह का रिस्क लेना नहीं चाहते हैं।'

कर्कश स्वर में चींखकर इंजन ने रेंगना आरंभ कर दिया था।

'मंजुला, हो सके तो मुझे माफ कर देना' कहता वह डिब्बे में चढ़ गया था।

उसे लगा ट्रेन उसके ऊपर से ही गुजर रही है। चक्कर सा आने लगा था। सीमेंट की बैंच पर न बैठती तो शायद नीचे गिर पड़ती। उस क्षण उसे पार्क में छिटके पड़े उस गैस पीड़ित की तरह उसकी अपनी आँखें भी कोटरों में अंदर-ही-अंदर धंसती सी लगी थीं। ..

किसी की खिलखिलाहट से उसका ध्यान टूटता है। सरदार अपने बच्चे के पेट में सर रखकर गुदगुदी कर रहा है। उसे खिलखिलाता देख उसकी माँ का चेहरा भी ताजे गुलाब की तरह खिल उठा हैं। कितना हंसता-खेलता संसार है इनका? क्या उम्र होगी इस सरदार की? यही कोई सत्ताईस-अट्टाइस की। गोरा-चिट्टा। और इसकी? भला तेईस-चौबीस से ज्यादा क्या होगी? कितनी अच्छी जोड़ी है। . . . . उसकी और उमेश की जोड़ी भी तो ठीक इसी तरह की बनती।

पहियों की खटखट तेज हो चुकी है। गाड़ी अपनी पूरी रफ्तार में भाग रही है। परन्तु स्मृतियां उसे पीछे खींच रही हैं-

कितनी टूट चुकी थी वह उमेश के इस व्यवहार से। जीवन में कोई रस ही नहीं रहा था। वह अपने-आपको बाग में छिटके पड़े उस इंसान में परिवर्तित होने के क्रम में पाती। डैडी और मम्मी तो उससे कहीं और अधिक टूट चुके थे। उनका हमेशा यही प्रयास रहा कि वह अतीत को भूल जाय। उसके मना करने के बावजूद उसके लिये रिश्ता ढूँढना आरंभ कर दिया था। उन्होने कई जगह बातें चलाई थीं। पर उसके इस शहर का नाम सुनते ही लोग चौकन्ने से हो उठते थे।

पापा ने केवल उसकी खातिर अपना ट्रांसफर बहुत दूर बिलासपुर करवा लिया था ताकि इस मुर्दा शहर की छाया तक उन पर न पड़े। दौड़धूप के बाद एक लड़का मिला। किसी ऑफिस में क्लर्क था। रिश्ते का चुनाव, चार्टर्ड एकाऊंटेंट से क्लर्क तक आ गया था। फिर भी मान लिया गया। बात पक्की हो गयी। मम्मी डैडी पूरी तरह शादी की तैयारी में जुट गये।

पर एक दिन लड़के के डैडी का पत्र मिला। लिखा था - 'हमें पता चला है कि गैस लीक के समय आप लोग भोपाल में ही थे। इसलिये यह रिश्ता हमें मंजूर नहीं है।'

उस वक्त उसे लगा था कि गॉडजिल्ला ने उसे इतनी दूर बिलासपुर में भी नहीं छोड़ा। कितने लम्बे हाथ हैं उसके। कितनी दूर तक पहुंच है उसकी। उसने उसके कठोर हथेली का घेरा अपनी गर्दन पर महसूस किया था। धीरे-धीरे उसका शिकंजा कसता चला जा रहा था। आँखे और जीभ बाहर निकलने लगी थी। . . . दम घुटने लगा था।

और इसके बाद लगातार उसे दौरे पड़ने लगे थे। अंग्रेजी सिनेमा का भारी-भरकम काल्पनिक पात्र गॉडजिल्ला सचमुच

www.eTelangana.org

उसका पीछा करने लगा था। और उससे बचने के लिये वह भागी जा रही थीं। बेतहाशा, बदहवास। कभी लगता उसने मुर्गी के चुज्जे की तरह उसकी टांगों को उंगलियों से पकड़ आकाश में उल्टा लटका दिया है। सारी धरती गोल-गोल घूम रही है। उसे अब पटका-तब पटका। . . . कभी लगता उसके भारी भरकम पांवों के नीचे पिसती चली जा रही है। . . . . पेट फटकर अंतड़ियाँ बाहर निकल रही हैं। . . . . चीख चिल्लाहट, बेहोशी। दौरे पर दौरा। . . . . मम्मी डैडी की भागदौड़ . . . . अस्पतालों का चक्कर. . . . हजारों का खर्चा. . . . ढेरों दवायें. . . ट्रीटमेंट. . . . . . . शॉक सभी कुछ।

परिस्थितियों ने उन्हें फिर से बिलासपुर से इस मुर्दा शहर में लाकर पटक दिया है। कोई फर्क भी नहीं पड़ता अब यहाँ रहने में या और कहीं रहने में।

"बेटी तूने अभी तक टैबलेट्स नहीं लिया है?"

हाँ लेना तो पड़ेगा। लिये बिना काम नहीं चलेगा। नहीं तो फिर से वही यातनायें. . . वही बिजली के झटके। डॉक्टर बार-बार कहता है- 'गॉडजिल्ला नहीं है। यह केवल भ्रम मात्र है। गॉडजिल्ला नहीं है . . . . नही है नहीं है. . . . .'

वह भी तो अपने-आपसे कई बार कह चुकी है - 'गॉडजिल्ला नहीं है . . . नहीं है. . . . नहीं है।' पर कहने मात्र से गॉडजिल्ला दिखलाई देना थोड़ी बंद हो जा रहा है।

इस बीच उसके विचारों में क्रमशः बदलाव आता चला गया है और इसके साथ ही उसका पीछा करते गॉडजिल्ला के रूप में भी। वह मूर्त से अमूर्त होता चला गया है। उसे लगने लगा है कि यह अमूर्त गॉडजिल्ला सिनेमा के उस मूर्त गॉडजिल्ला से सैकड़ों-

हजारों गुना बड़ा है। उसकी पहुंच संसार में हर जगह है. . . .।

पिछले स्टेशन पर एक मुसलमान बुजुर्ग चढ़ा था। वह सरदार के बगल में बैठा हुआ है। उसके हाथ में अखबार है। वह उसे लेकर पढ़ने लगती है।

वह बुजुर्ग बच्ची से खेलने लगा है। बच्ची के चलते वह सरदार परिवार से घुल मिल सा गया है।

स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही चाय-चाय की चीख। सब एक परिवार की तरह ही मिट्टी के कुल्हड़ में चाय लेकर चुस्की भरने लगते हैं।

"तो लगता है आप पंजाब से ही आ रहे है?" वह बुजुर्ग पूछता है।

"हाँ जी"

"कहाँ जाना है?"

"भोपाल। ओथे रंदेवा।"

"क्या हाल है पंजाब का?"

"की बतायें। आप तो रोज पेपर पड़ देओ। टी.वी. चदेक देने।" सरदार युवक जवाब देता है।

"बस वोई बंदूकां, गोली. . . . बम. . . . खून खराबा. . ." इस बार सरदारनी कहती है।

उसे लगता है जरूर यह खून-खराबा गॉडजिल्ला ने ही मचाया है।

पीछे वाली सीटों पर कुछ हो-हल्ला होने लगा था। क्या हो रहा है जानने के लिये उनके साथ वह भी उठकर देखने लगती है। दो बदमाश एक अधेड़ उम्र के आदमी को पीट रहे थे।

सबके चेहरों पर आक्रोश। पर बदमाशों के खौफ से कोई

www.eTelangana.org

आगे-आने का साहस नहीं कर रहा था। पर सरदार चुप नहीं बैठ सका। फुर्ती से उनके बीच पहुँच जाता है। बीच-बचाव का प्रयत्न करता है। परन्तु जब वे बदमाश नहीं मानते तो उनकी गर्दन पकड़ उन्हें दूर ठेल देता है। वे सरदार को खा जाने वाली नजरों से देखते हैं। तू-तू मैं-मैं होती है।

"हम तेरे को भोपाल में देख लेंगे।" कहते वे धमकी देकर जाने लगते हैं।

"जा-जा लोय। ऐ दमकी किसी और न देई।" सरदार युवक उनकी धमकी से बिना डरे कहता है।

वह फिर से अपनी सीट पर आकर बैठ जाता है। सबकी नजरों में उसके प्रति एक आदर भाव सा जाग उठता है।

ट्रेन ने फिर तेजी पकड़ ली है। सब कुछ फिर से पहले की तरह ही व्यवस्थित हो चुका है। डैडी ऊपर वाली बर्थ पर फिर पहले की तरह ही सो गये थे। मम्मी बगल में बैठी उसी तरह ऊँघ रही थी। सरदार अपनी बच्ची के पेट में सर रखकर पहले की तरह ही गुदगुदा रहा था।

"बदमाशों से इस तरह आपको दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहिए था। ये लोग अच्छे लोग नहीं हैं। भोपाल में बड़ा गैंग है इनका।" बुजुर्ग मुसलमान कुछ चिंतित सा कहता है।

"बेचारे बुड्डे न अंखा के सामने बेरहमी नाल पिटते देख कैसा चुप रह सकदे।"

"पर तुम्हारी बात कुछ और है।"

"कैसे?" के अंदाज में सरदार उसकी तरफ देखता है।

बुजुर्ग कहने के लिये कुछ हिचकता है - "यहां पर अपने लोगों से अलग इस तरह पड़े हुए हो। . . . पंजाब में इतना गड़बड़

चल रहा है कहीं कुछ. . . ."

वह पूरी बात नहीं कह पाता है। सरदार धीमें से मुस्कुराता हुआ कहता है- "आपने सच तो कहा चाचाजी पर इस तरह डरने सा काम किद्दा चलेगा। डर-डर कर कब तक जीएंगे। जीना है तो रिस्क तो लेनी पयेगी।"

वह उनके चेहरे की तरफ देखती है। उसे आश्चर्य होता है इतना हादसा हो चुकने के बाद भी उसके चेहरे पर खौफ नाम की कोई चीज नहीं है। बल्कि एक दृढ़ता है, जीने की एक ललक है। उसकी पत्नी के चेहरे पर भी ऐसी तटस्था है मानों यह कोई आम बात है।

घन्-घन्-घन्-घन् करती गाड़ी किसी पुल पर से गुजरने लगी है।

सोचती है पंजाब के गड़बड़ के चलते यहां पर उनका जीवन कितना असुरक्षित हो गया है। किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है। दिल्ली और अन्य शहरों में हुए सिक्खों के कत्ले-आम की रोंगटे खड़ी कर देने वाली खबरें तो वह अभी भी नहीं भूली है। पर यह आदमी किस तरह निश्चिंत हो कर जी रहा है। अगले क्षण आने वाले खतरे की परवाह किये बिना ही नहीं बल्कि और भी नये-नये खतरे मोल लेते हुए। . . .

मुर्दा शहर पास आने लगा है। सब अपना बोरी-बिस्तर संभालने लगे हैं।

लाइन क्लियर न मिलने से गाड़ी आउटर सिग्नल के पास रुक गयी है। सामने एक झोपड़ी-नुमा होटल है। स्टीरियों अपनी पूरी आवाज में गला फाड़कर गा रहा है। "-जीना यहाँ! मरना यहाँ! इसके सिवा! जाना कहाँ।"

www.eTelangana.org

उसी अंदाज में गाड़ी भी फिर से चल पड़ी है। प्लेटफार्म पर सैकड़ों की भीड़। सभी किसी न किसी रूप में गॉडजिल्ला से पीड़ित लोग। पर किसी के चेहरे पर किसी तरह का खौफ नहीं है। फिर वह अकेली ही क्यों खौफ खाये? . . . नहीं ऐसा डरने से काम नहीं चलेगा। उसे गॉडजिल्ला का सामना करना पड़ेगा। उसके विरुद्ध जेहाद में शामिल होना पड़ेगा। . . .

गाड़ी प्लेटफार्म पर आकर रुकती है। एक के बाद एक सब नीचे उतरते हैं।

"बेटी। दवाओं का किट तो सीट पर ही भूल गये।" प्लेटफार्म पर उतर माँ ऐसे कहती है मानों जेवरों का बक्सा भूल गयी हो।

"मम्मी अब उसकी कोई जरूरत नहीं है।"

माँ आश्चर्य से उसकी तरफ देखती है। इतनी दृढता इतना आत्मविश्वास उसने आज तक उसके चेहरे पर नहीं देखा था, पिछले दस ग्यारह वर्षों में तो कदापि नहीं।

❀ ❀ ❀

प्रेरणा - २

१९९७

साबुन

'घर में चावल है न दाल। सारा का सारा राशन समाप्त हो चुका है। लाओगे तभी चूल्हा जलेगा।' बिमला ने थैले और राशन की सूची उसके हाथों में थमाते हुए कहा।

यह बात उसके लिए कोई नयी नहीं है। हर सात तारीख के दिन यह संवाद इस रूप में या इससे मिलते-जुलते किसी दूसरे रूप में उसके कानों में पड़ना लाज़िमी है। उसे इसकी आदत-सी पड़ गयी है।

और इस आदत के मुताबिक ही चेहरे पर बिना किसी प्रतिक्रिया के वह सूचि जेब में डाल और थैले अपनी खटारा गाड़ी के हैंडिल के सुपुर्द कर निकल पड़ता है।

रास्ते में वह राशन की उस सूची को जेब से निकाल कर देखता है। लम्बी-चौड़ी सूची है। चावल, दाल, तेल, प्याज, लहसुन, नमक। ...सभी जरूरी भी तो हैं। कोई भी चीज कम नहीं की जा सकती पर उतने पैसे जेब में हैं भी तो नहीं।

साला यह सात तारीख का दिन हमेशा उसके लिए तनाव का दिन रहता है। महीने के उन्तीस दिन तो वह किसी तरह काट लेता है, पर यह दिन काटना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। पैसों से संबंधित हर काम को वह इस दिन पर धकेलते हुए आराम से काट लेता है। पर यह दिन आते ही....

सात तारीख के लिए मुँह से गंदी गाली निकलती है। अगर यह सात तारीख दुनिया के कैलेंडर में न रहता तो कितना अच्छा होता। किस सुकून से जिंदगी गुजर रही होती। वह मन ही मन सोचता है।

www.eTelangana.org

चप्पल का अंगूठा निकल गया है। चलने में कठिनाई महसूस करता है। चप्पल की हालत भी उसके अपने खटारा साइकिल के जगह-जगह गटर लगे टायर की तरह हो गयी है। हर बार सोचता है कि इस सात तारीख को वह उन पुरानी चप्पलों को अलविदा कर नये खरीदेगा पर इस तरह न जाने कितने सात तारीख निकल गये। उसे लगता है कि ये चप्पल उसके शरीर के अभिन्न अंग-से बन गये हैं।

जब वह चप्पल मरम्मत के लिए मोची के पास जाता है तो मोची उसे ऐसे देखता है मानों कह रहा हो- 'अब तो इन पर रहम करो.. .. ।'

खैर सवा रुपये की भेंट चढ़ा वह उन चप्पलों की मुक्ति की मोहलत में एक सात तारीख और जोड़ देता है।

लगता है इस सात की संख्या का उसके जीवन से बहुत ही गहरा संबंध है। वह सातवें महीने की सात तारीख और संयोग ही समझो सुबह के सात बज कर सात मिनट पर इस दुनिया में टपका था। और तब से अब तक इस नरक को भोगता चला आ रहा है। उसका विचार है कि कुछ लोग केवल दु:ख भोगने के लिए ही इस दुनिया में आते हैं और उन बदनसीबों में वह भी एक है। माँ के गर्भ में नौ महीने तक चैन से रहना उसे कदापि पसंद न था। इसलिए हाथ-पाँव मार कर सातवें महीने में ही बाहर आ गया था। यह भी कहा जाता है कि उसकी पैदायश के बाद पूरे सात दिन तक उसकी माँ मूर्छित अवस्था में थी। सातवें वर्ष में कुत्ते के काटे जाने पर सात इंजेक्शन उसके पेट में चुभे थे। पिछले कई वर्षों से बस झेलती चली आने वाली धर्मपत्नी के साथ उसके सात फेरे भी सात तारीख को ही पड़े थे। और नौकरी भी मिली थी तो सात

तारीख को ही, जिसे वह गुलामी से ज्यादा नहीं समझता है। पिछले बाईस सालों से इस गुलामी की गाड़ी को किसी मरियल घोड़े की तरह खींचता चला आ रहा है। और तनख्वाह भी मिलती है तो सात तारीख को ही। कितना अटूट सम्बन्ध है उसका इस तारीख से। नहीं तो वह डेली पेड (दैनिक वेतन धारी) बन कर सात तारीख को ही तनख्वाह क्यों उठाता जबकि उससे कम पढ़े-लिखे और अयोग्य लोग भी मंथली पेड (मासिक वेतनधारी) की लिस्ट में आकर शान से पहली तारीख को तनख्वाह उठा रहे हैं।

कर्रम्-कर्रम् करते अपनी साइकिल पर जब वह बाजार के मुहाने पर पहुँचता है तो उसे सारा बाजार किसी भारी भरकम अजगर की तरह मुँह फाड़े लगता है। क्या खरीदे और क्या न खरींदे, यह निर्णय करने के लिए वह पत्नी की दी हुई सूची को निकाल कर एक सरसरी निगाह दौड़ाता है।

सात तारीख को तनख्वाह मिलने से ही उसका तनाव आरंभ हो जाता है। दूध का इतना... धोबी का इतना... कपड़े की दुकान पर इतना... बच्चों की पढ़ाई की फ़ीस इतनी...।

पिछले दो महीनों से दशहरा पर लिये गये एडवांस की किस्तें और कलर टी.वी. की किस्तें कटने के बाद तनख्वाह हाथ में आती है भी तो भला कितनी। कितना मना किया था कलर टी.वी. न लेने के लिए। पर कोई उसकी बात माने तब न। ब्लैक एंड व्हाइट लेने में क्या हर्ज था। पर कहने लगे टी.वी. बार-बार खरीदने की चीज थोड़ी ही है। लेना है तो अच्छी ही चीज लो। कलर टी.वी. वह भी ऑर्डिनरी नहीं बल्कि एफ.एस.टी. रिमोट कंट्रोल के साथ। और फिर जमी-जमाई एकमुश्त रकम कोई थोड़ी बाँध रहे हैं। तनख्वाह में अपने-आप काटता चला जाएगा और

www.eTelangana.org

मालूम भी न पड़ेगा।

'हाँ कैसे मालूम पड़ेगा तुम लोगों को? मालूम पड़ेगा तो मेरे को। तुम लोगों को तो टी.वी. के सामने बैठ कर मज़ा ले-ले कर एक-से-एक प्रोग्राम देखना है। भुगतना तो मुझे है। आने वाले तीन साल की तनख्वाह झाड़ बुहार कर ले गया है यह कलर टी.वी.....।' वह अपने-आप में बड़बड़ाता है और इस कलर टी.वी. के बारे में सोचते हुए अचानक उसके दिमाग़ में कुछ कौंधता है। उसके दिमाग़ के स्क्रीन पर पिछली सात तारीख का वह सीन उभरता है जब वह पसीने में लथपथ अपनी खटारा साइकिल पर राशन के थैले लँटकाये घर पहुँचा था।

राशन में अपने पसंदीदा ब्रांड फिल्मी सितारों का सौन्दर्य साबुन लक्स इंटरनेशनल न देख, फिल्मी सितारा बनने का स्वप्न देखने वाली उसकी कॉलेज जाने वाली बिटिया ने राशन का सारा पैकेट उठा कर पटक दिया था। स्वास्थ्य के प्रति अति जागरुक, फुटबॉल खिलाड़ी उसका बड़ा सपूत लाइफबॉय न लाने पर गुस्से से पाँव पटकता हुआ बाहर निकल गया था, फिर से घर वापस न लौटने की धमकी दे कर। 'पानी चला जाएगा' का खेल खेलने को आतुर उसका छोटा लाड़ला ली-सेन्सी न लाने पर इस तरह हिचक-हिचक कर रोने लगा था मानों उसके सारे आरमान टूट कर चकनाचूर हो गये हों। पवित्र गंगाजल से बने गंगा साबुन न लाने पर उसकी बूढ़ी माँ जाप के साथ-साथ घर वालों के लिये भार बन जाने का ताना देती हुई लगातार बड़बड़ाती रही थी। पिछले बरस से मायके में आकर बैठी , एक बच्चे की माँ उसकी बड़ी बेटी, त्वचा से ही अपनी उम्र का पता न चलने देने के लिए संतूर साबुन न लानें पर अलग मुँह फुलाये बैठी थी। और पत्नी....

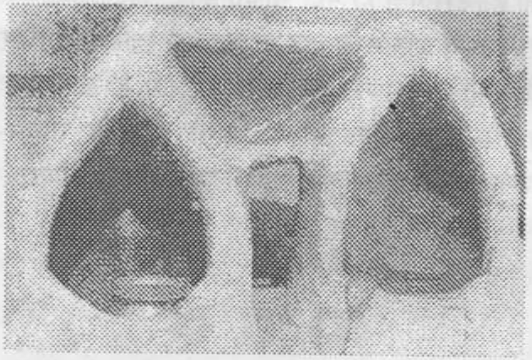
उसका सिर भन्ना उठता है। इन्ही विचारों में फँसा वह कब राशन खरीदता है और अपनी खटारा साइकिल पर कब घर पहुँचता है, उसे पता ही नहीं चलता है।

उसके लौटने के बाद ही चूल्हा जलाने का इतंजार करती उसकी पत्नी जब राशन का थैला उंडेलती है तो उसमें केवल साबुन-ही-साबुन निकलते हैं। सभी तरह के साबुन-लॅक्स इंटरनेशनल, संतूर, लीसैन्सी, गंगा, लाइफबाय, रेक्सोना....।

दक्षिण समाचार
१६ अक्तूबर १९९६

www.eTelangana.org

शक



सबके चेहरे पर दहशत, खौफ...!

भोनगिरी स्टेशन पर काकतीय एक्सप्रेस खाली खड़ी हुई है और सारे यात्री बाहर प्लेटफार्म पर। स्टेशन पर पहुँचते-न-पहुँचते सारे के सारे यात्री लगभग डिब्बों से कूद पड़े थे। ....भाग-दौड़, शोर-गुल, हो-हल्ला, चीख-चिल्लाहट, से सारा प्लेटफार्म भर उठा था। कोई 'हे राम' कह रहा था, कोई 'हे मेरे अल्ला' कोई 'जय हनुमान ज्ञान गुण सागर' कहता संकट मोचन का जाप कर रहा था तो कोई मन-ही-मन वाहे गुरु की दुआयें मांग रहा था।

सबको अपनी-अपनी जान की पड़ी हुई थी। उतरने की हड़बड़ी में कुछ गिर पड़े थे। ....कुछ को चोंटे आई थी, किसी के पाँव में मोच तो, किसी का हाथ टूटा था। कोई बूढ़ी कराह रही थी, तो किसी का बच्चा लोगों के पाँवों तले आ गया था।

संजय भी प्लेटफार्म पर खड़ी इस भीड़ में एक था। वह भी आतुरता से यह नजारा देख रहा था। .....उसका डिब्बा ही तो इस नजारे का केन्द्र था। वारंगल स्टेशन के शेड में जब उसने इस

ट्रेन का बोर्ड किया था तो साथ में एक बूढ़ा मुसलमान भी चढ़ा था। उम्र रही होगी कोई अट्ठावन-साठ के करीब। जिस्मानी तौर पर दुबला-पतला और गोरा चेहरा। लम्बी दाढ़ी। ऊपर तक खोंचा हुआ चूड़ीदार पायजामा। सफेद लालची। सर पर नमाज पढ़ते वक्त पहने जाने वाली जालीदार टोपी। ....प्लेटफार्म तो था नहीं इसलिये संजय ने ही उसे सहारा देकर डिब्बे में चढ़ाया था। उसका ट्रंक भी उसने खुद ही उठाकर अंदर रख दिया था। जी.आई. शीट का बना ट्रंक उसने सीट के नीचे सरका दिया था। बड़ी मुश्किल से गया था अंदर। इस अहसान के बदले उसने कहा था- 'बेटा! तेरा लाख-लाख शुक्र.... अल्लाह तेरा भला करे।

"इसमें शुक्रगुजार होने की बात क्या है चिचा। पर चिचा इत्ता बड़ा ट्रंक लेकर क्यों सफर करते हो इस उमर में?" संजय ने उससे पूछा था।

"क्या करूं बेटा! सूटकेस था तो पोत्रियाँ लेकर चली गयीं। एक्सकरसन पर गयी हुई हैं। ले-देकर येई पेटी बची थी। इसको ही ले आया।" अपनी जालीदार टोपी निकाल कर एक हाथ में पकड़ दूसरे हाथ पर झाड़ते हुये उसने जवाब दिया था।

दोनों आपस में दुनियाँ जहाँ की बातें करने लगे थे।

काकतीय एक्सप्रेस काजीपेट जंक्शन पर आकर रुकी तो रोज की तरह यात्रियों का एक बड़ा रेला कंपार्टमेंट में घुस आया था। .....संजय ने दो कप चाय लिये। बूढे ने छुट्टे पैसे देने की बहुत कोशिश की पर संजय ने नहीं देने दिया।

चाय पीने के बाद भी लगा गाड़ी छूटने में काफी वक्त है। अचानक बूढ़े को पानी की याद आ गयी। संजय से सीट और ट्रंक देखने की बात कह वह उतर गया था। सीसे में पानी लाने के

www.eTelangana.org

वास्ते। संजय ने ट्रेन छूटने का हवाला देते हुये मना भी किया था पर बूढ़ा- 'अब्भी गया अब्भी आया' कहता उतर गया था।

....और ट्रेन चल पड़ी थी पर बूढ़ा नहीं आया। संजय आँखे फाड़-फाड़कर देख रहा था बाहर। पर बूढ़े का कहीं पता नहीं था। 'छूट गयी न ट्रेन आखिर' वह मन-ही-मन बड़बड़ाया था। फिर सोचा, हो सकता है पीछे वाले किसी डिब्बे में चढ़ गया हो। अगले स्टेशन पर आ जायेगा।

खाली सीट देखकर हर कोई उस पर बैठने की कोशिश कर रहा था। संजय अगले स्टेशन तक किसी भी हालत में सीट संभाले रखना चाहता था। पर यात्री थे कि मान ही नहीं रहे थे। एक यात्री व्यंग्य करता बोला- "आप भी भाई कमाल करते हैं। अगर वो दूसरे डिब्बे में चढ़ गया हो तो उसे अगले स्टेशन तक इंतजार करने की जरूरत नहीं है। ये कोई पैसेन्जर ट्रेन या डाक गाड़ी तो है नहीं। काकतीय एक्सप्रेस है। आगे से लेकर पीछे तक रास्ता खुला है। आने का होता तो कभी का नहीं आ जाता अंदर ही अंदर।"

संजय को भी लगा था, बात तो सोलहों आने सच है। उसने उसे वह सीट ऑफर तो कर दी पर इस शर्त पर कि अगर बूढ़ा अगले स्टेशन पर आ जाये तो वह खाली कर देगा।

अगला स्टेशन घनपुर था। गाड़ी रुकी और चल भी दी पर बूढ़ा नहीं आया। इसके बाद एक के बाद एक स्टेशन पार होते चले गये पर वह बूढ़ा नहीं आया। संजय की फिक्र उसके ट्रंक को लेकर थी। यही सोचने लगा था कि अगर बूढ़ा नहीं आया तो वह उस भारी-भरकम ट्रंक का क्या करेगा।

उस ट्रंक और बूढ़े को लेकर लोगों में आपस में बातें होने लगीं थी। संजय के ठीक सामने हरे रंग का स्किन टाइट जीन्स का

पतलून पहने बैठे नवयुवक ने कहा -"न जाने ट्रंक में क्या-क्या होगा! बेचारा बूढ़ा कितना हाय-तौबा कर रहा होगा।"

"मुझे तो लगता है बूढ़े ने जानबूझकर ही ट्रंक यहाँ छोड़ दिया है।" बूढ़े की सीट की बगल में माथे पर कुंकुम का छोटा सा तिलक लगाये बुजुर्ग कहता है।

"जानबूझकर भला वो क्यों छोड़ेगा अपना ट्रंक.... ? क्या तुम अपना ये बैग जानबूझकर छोड़कर चले जाओगे....... ?" संजय के सामने बैठे उस युवक ने व्यंग कसता सा कहा तो लोग हंसने लगे थे।

"बात हंसने वाली नहीं है। ट्रंक में देख रहे हो कित्ता बड़ा ताला लगा हुआ है।"

"हाँ देख तो रहे हैं। तो... ?"

"इसके अंदर कुछ भी हो सकता है ?" माथे पर टीके वाला बुजुर्ग कहता है।

"कुछ से मतलब ?"

"कुछ भी! बात नजरअंदाज करने वाली नहीं है। एक बार दिल्ली में क्या हुआ था पता है ?"

सब आतुरता से उसकी तरफ देखने लगे थे।

उसने बताया कि दिल्ली में एक बार एक सुपर फास्ट ट्रेन में इसी तरह के एक बड़े से ट्रंक के साथ एक औरत चढ़ी। पढ़ी-लिखी और किसी ऊँचे घराने की लगती थी। सीट पर बैठकर उसने अपना बैग खोला। उसमें से सौ-सौ रुपयों के एकदम नये नोट निकाले। पांच हजार रुपया गिना और ट्रंक का ताला खोल सबके सामने ही उसमें रखकर फिर से ताला लगा दिया और उतर गयी।

www.eTelangana.org

"उतर गयी ?" एक यात्री आश्चर्य से पूछता है।

"हाँ उतर गयी।"

"फिर नहीं चढ़ी ?"

"वही तो बता रहा हूँ। ट्रेन चल पड़ी पर वह नहीं आई। स्टेशन पर स्टेशन पार होते गये पर वह नहीं आई। वह ट्रंक दिल्ली से मद्रास पहुँच गया।"

"बाप रे!"

सब उत्सुकता से कान लगाये उसकी बात सुन रहे थे।

"किसी ने बीच में रिपोर्ट नहीं किया पुलिस में ?"

"डिब्बे के उस सेक्शन में सभी पाँच-छः यात्री एक ही गुट के थे और मद्रास जा रहे थे। कोई झगड़ा-फसाद वाली बात हीनहीं थी। लाइन क्लीयर था। चुपचाप ट्रंक लेकर चले गये।"

"बहुत किस्मत वाले थे। पाँच हजार तो उसमें नगद ही था। और न जाने अंदर और क्या-क्या कीमति सामान रहा होगा ?" एक यात्री मुँह से लार टपकाता सा बोल पड़ा।

"घर जाकर किसी तरह उन लोगों ने ताला तोड़ा और जब ढक्कन खोला तो ....." कहता हुआ वह बीच में ही रुक गया था।

"तो क्या था अंदर ?"

"सबकी चीख एक साथ निकल गयी।"

"क्यों ? क्या था उसके अंदर ?"

"लाश... ! एक औरत की लाश।" वह जवाब देता है।

सब सन्न से रह गये थे। लगा मानों सबको लकवा सा मार गया।

वातावरण में दहशत सी फैल गयी थी। सबकी नजर सीट के नीचे रखे ट्रंक की तरफ चली गयी थी। बारीकी से मुआयना

करने लगे थे। लोगों ने सूंघकर भी देखा पर कहीं से कोई बास नहीं थी।

एक आदमी ने ट्रंक को सीट के नीचे से बाहर खींचा। सीट न मिलने से खड़े, चेहरे पर चेचक के दाग वाले आदमी ने उसे ऐसा करने से मना करते हुये कहा-"ऐसा मत डिस्टर्ब करो। लाश होना ही जरूरी नहीं है और भी कुछ हो सकता है।"

"और क्या हो सकता है ?"

"कहा न कुछ भी हो सकता है।"

"कुछ से मतलब ?"

"कुछ भी। ...... बम वगैरह भी हो सकता है।"

"हाँ शायद वह भी हो सकता है।" ट्रंक में लाश होने की कहानी बताने वाला बुजुर्ग उसका समर्थन करता है।

वहाँ पर बैठे लोगों के चेहरे पर कुछ तनाव सा आ जाता है।

"भला क्यों रखेगा वह बम इसमें ?" संजय के सामने बैठा स्किन टाइट जीन्स पतलून वाला युवक कहता है।

संजय भी उसकी बातों से सहमत सा लगता है।

"अरे भाई! अपको पता नहीं है। बहुत भोले हैं आप।" चेहरे पर चेचक के दाग वाला आदमी कहता है।

"हो सकता है वह आई.एस.आई. का एजेंट हो।" माथे पर टीके वाला बुजुर्ग कहता है।

"ये आई.एस.आई. क्या है ?" संजय के बगल में बैठा यात्री पूछता है।

"आई.एस.आई. यानी कि पाकिस्तानी खुफिया।" चेहरे पर चेचक का दाग वाला आदमी जवाब देता है।

www.eTelangana.org

"पर चेहरे से तो ऐसा नहीं लगता है।" स्किन टाइट पतलून वाला युवक कहता है।

"चेहरे पर लिखा होता है क्या?"

"पर वो तो एक बुजुर्ग है। ...दुबला ...पतला.... फूंकने से वहाँ गिरने वाला बूढ़ा क्या खुफिया बनेगा।"

"ऐसे लोग ही तो खुफिया का काम करते हैं ताकि किसी को शक तक न हो।"

"पर वो भला बम काहे वास्ते रखेगा? बम फूटने से उसको का मिलेगा?" जगह न मिलने से नीचे ही बैठी देहातिन बूढ़ी कहती है।

"अजी माँजी! तुमको कुछ पता नाहीं। ...तोड़-फोड़ कर लोगों में बेचैनी फैलाना ही तो इनका काम है।"

"हाल ही में कुछ चर्चो और मंदिरो में बम फूटे थे न। वो सब इन लोगों की करतूत ही तो है।"

"अरे भाई तुमको पता है इनकी योजना तो चारमीनार और लाल किले को भी बम लगाकर उड़ा देने की थी।"

पर संजय को बूढ़े को लेकर ऐसा नहीं लगता है। संजय ने उसके साथ बातें की थी। उसे ट्रेन चढ़ने में मदद की थी। उसके बातों से, उसके स्वभाव से, यहाँ तक कि उसके हुलिया से कहीं भी उसे नहीं लगा था कि वह इतना जालिम काम कर सकता है।

...संजय की बगल वाली सीट खाली हो गयी थी। माथे पर टीके वाला बुजुर्ग भी उठकर चला गया था। ....चार की कैपेसिटी वाले सामने बेंच पर करीब सात लोग एक-दूसरे से सटकर बैठे हुए थे, कोई आगे तो कोई पीछे, कोई दायें कूल्हे पर तो कोई बायें कूल्हे पर। पर अब उस पर केवल तीन लोग ही थे।

खड़ा हुआ चेचक दाग वाला आदमी भी गायब था और नीचे बैठी देहातिन बूढ़ी भी न जाने कहाँ खिसक चली थी। स्किन टाइट जीन्स पतलून वाला संजय के सामने बैठा युवक भी खड़ा होता हुआ कहता है -"लगता है उनका अनुमान सही है। वह पानी लाने का बहाना कर जानबूझकर उतरा था। .....अगर पानी लाना होता तो पहले ही न उतरता?....."

डिब्बे के उस वर्ग में संजय अकेला बचा था। वह खड़ा होकर देखता है। दूसरे वर्गो में भी इक्के-दुक्के लोग ही दिखलाई दे रहे थे। लगता है वे भी जाने की तैयारी में थे। ....देखते ही देखते सारा डिब्बा खाली हो गया था। .....'भला अपन भी रिस्क क्यों ले' सोच संजय भी अपना लंच का बैग उठाये उससे जुड़ी पीछे वाले डिब्बे में चला गया था। पर उस डिब्बे में भी दहशत सी मची हुई थी। लोग और पीछे वाले डिब्बे की तरफ भाग रहे थे। और देखते-ही-देखते वह डिब्बा भी खाली हो गया था।

आगे के डिब्बे वाले और भी आगे के डिब्बों की तरफ और पीछे वाले और भी पीछे वाले डिब्बों की तरफ भाग रहे थे।

लोगों में हाहाकार मच गया था। चीख-चिल्लाहट आरंभ हो गयी थी। सभी के चेहरों पर दहशत। आगे और पीछे वाले डिब्बे ओवर लोड होते चले जा रहे थे। लोगों को लग रहा था कि बम अब फूटा, तब फूटा।

और भोनगिरी स्टेशन पर उतरने के बाद ही लोगों के जान में जान आई थी।

सारे-के-सारे यात्री उतर गये थे। सारी ट्रेन खाली खड़ी हुई थी प्लेटफार्म पर।

और थोड़ी देर में ही दन-दन करता पुलिस दल आ

www.eTelangana.org

पहुँचा था और साथ ही विस्फोटक विशेषज्ञ भी मेटल डिटेक्टर लिये हुए। उन्होंने सारे प्लेटफार्म को अपने कब्जे में ले लिया था। स्टेशन के बाहर दमकल भी आकर खड़े हो गये थे किसी भी आपातकालीन स्थिति से निपटने के लिये।

यात्री प्लेटफार्म पर दूर खड़े तमाशा देख रहे थे। संजय का डिब्बा सबके आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। दो विस्फोटक विशेषज्ञ डिब्बे के अंदर गये और जी.आई.शीट की बनी वह ट्रंक ले आये बाहर।

'अरे ये पेटी तो मेरा है।' कहते वह बूढ़ा लोगों के मजमें से अचानक बाहर निकल आया था।

'अरे यह तो वही मुसलमान बूढ़ा है। ...दुबला-पतला, ...ऊपर तक खोंसा हुआ चूड़ीदार पायजामा, ...सफेद लालची.... ठुड्डी पर दाढ़ी..... सर पर नमाज पढ़ते वक्त पहने जाने वाली वही जालीदार गोल टोपी...।'

भीड़ में खड़े संजय को उसे देख आश्चर्य होता है। आखिर यह बूढ़ा यहाँ पहुँचा कैसे? ....अगर गाड़ी में ही दूसरे डिब्बे में था तो आया क्यों नही इतनी देर तक?

दूसरे मुसाफिरों ने भी कहा- 'हां यही है वह आई.एस.आई. ऐजेन्ट।'

बूढ़े ने जब उनके पास जाकर कहा कि यह पेटी उसका है तो अचानक उनकी बंदूके तन उठी। अफसर ने अपने पिस्तौल से निशाना साधते हुए 'हैंड्सअप' कहा।

पर लगता है हैंड्सअप का अर्थ उसे समझ में नहीं आया या समझकर भी नासमझने का नाटक कर रहा था।

"बनने की कोशिश मत कर ....दोनों हाथ ऊपर उठा"

अफसर ने कड़क आवाज में कहा।

बूढ़े ने दोनों हाथ ऊपर कर लिये। अफसर के इशारे पर सिपाही ने उसकी तलाशी ली। पर तलाशी में टिकट, कुछ रुपये और ट्रंक की चाबी के अलावा विशेष कुछ नहीं मिला।

फिर उस सिपाही ने उसके दोनों हाथ पीछे जोर से मरोड़कर पकड़ लिया। उसकी चीख सी निकल पड़ी।

"तू किसके लिये काम करता है?" अफसर ने फिर कड़ककर पूछा।

"समझा नई।"

"अभी समझ जाएगा" - एक घूंसा उसके गाल पर जड़ता है।

बूढ़ा लड़खड़ाता है पर पुलिस द्वारा पीछे पकड़े रहने के कारण गिरता नहीं है।

"बोल तू किसके लिये काम करता है?"

"अपने खुद के वास्ते....।"

फिर दूसरे गाल पर घूंसा उल्टे हाथ का।

वह अधमरा सा हो जाता है।

"इस ट्रंक में क्या है?"

"कुछ.... नई.....।"

पीठ पर धौल।

फिर अफसर के आदेश पर ट्रंक का ताला खोलता है।

सारे दर्शक दम साधे खड़े थे। पुलिस वाले भी उसे निशाना बनाये दम साधे खड़े थे।

"एक-एक कर सब सामान बाहर निकाल।" अफसर ने आदेश दिया। "और सुनो कुछ भी चालाकी करने की कोशिश की तो...।"

www.eTelangana.org

सब चौकन्ने से हो गये थे। कुछ तो भागने की तैयारी में थे। इधर बम निकला, उधर भागे।

वह एक-एक कर ट्रंक से अपना सामान निकालने लगा।

पहले अचकन.... फिर चूडीदार पायजामा..... कुर्ता..... लुंगी..... तुवाल...... अंडरवेल..... मंजन..... साबुन..... सुरमें की सीसी..... और अंत में ट्रंक को उलटकर दिखा देता है।

"अरे इसमें तो बम वम कुछ नहीं है!" सब चैन की सास लेते हैं।

"फिर तुम इसे लावारिस की तरह क्यों छोड़कर गये?".... पुलिस अफसर पूछता है।

"काजीपेट में पानी के वास्ते गया तो गाड़ी छूट गयी!"

"फिर यहाँ कैसे पहुँचा?"

"पीछे एक सुपरफास्ट गाड़ी थी। उसमें आकर यहाँ उतर गया और इस गाड़ी का इंतजार कर रहा था!"

"फिर ट्रेन के आते ही क्यों नहीं चढ़ा?"

"हंगामा देखकर मैं भी हैबत में पड़ गया। लोगाँ बम-बम करके बोले तो खाली-पीली मैं भी सच समझ बैठा। मेरे को क्या पता था कि मेरे पेटी के बारे में ही अफवाह फैली थी!"

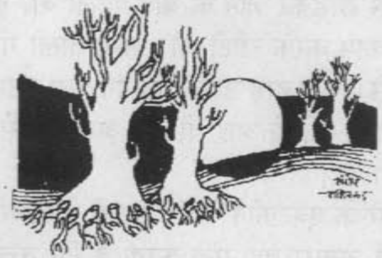
अफसर के चेहरे पर कुछ शर्मिंदगी सी छा जाती है।

प्लेटफार्म पर खड़ी खाली ट्रेन किसी अस्थिपंजर सी लग रही थी।

❀ ❀ ❀

समरलोक जुलाई सितंबर १९९३

कोकिला उर्फ नई सुबह



एक नहीं दो नहीं सैकड़ों ..... सैकड़ों नही हजारों ..... हजारों नहीं लाखों..... लोगों का रेला समाप्त ही नहीं हो रहा हैं। मानों सारा समुन्दर ही उमड़ा चला आ रहा है। आवेश में मचलता हुआ, उफनता हुआ, कोलाहल करता हुआ। मुट्ठी बांधे हाथ, हवा में उछालते हुए, चिल्ला रहे हैं हजारों कंठ। लगता है धरती फट पड़ेगी .... आसमान टूट पड़ेगा। इस अपार जनसमुद्र में एक जाना पहचाना चेहरा उसे दिखाई देता है। 'पिताजी'-'पिताजी' कहता वह उसकी तरफ भागता है। पर पिताजी इस विशाल भीड़ में अदृश्य हो जाते हैं और वह लोगों के बीच बेहताशा भागते हुए उन्हें ढूंढने लगता है। रेला बढ़ता ही जाता है.... कोलहल बढ़ता ही जाता है। पिताजी भीड़ में खो जाते हैं, वह भी भीड़ में खो जाता है।

और अचानक उसकी नींद खुल जाती है। भीड़ का कोलाहल अभी तक उसके कानों में सुनाई पड़ रहा है। कुछ क्षणों बाद उसे आभास होता है कि यह तो फिछवाड़े वाली खिड़की से आती, विशालकाय पीपल के पत्तियों के हवा में डोलने का शोर है।

वह उठ बैठता है खाट पर। मां बगल में लेटी हुई है। वह कुछ चैन की सांस लेता है। स्वप्न की दहशत से उबरने में उसे

www.eTelangana.org

कुछ वक्त लगता है। मां थकावट भरी नींद में सो रही है। बदन से तम्बाकू की बू आ रही है। उसे याद आता है वह दिन जब माँ, पिताजी के घर छोड़कर जाने के बाद पहली बार बीड़ी बनाने के कारखाने से काम करके लौटी थी। कैसी तीखी गंध आ रही थी उसके बदन से। किस तरह उसका दिमाग भन्ना उठा था। अचानक उसे कैसे मितली-सी हो आई थी। पर अब तो उसे इसकी आदत सी हो गई है।

कमरे के एक कोने में मंद रोशनी से ढिबरी जल रही है। मां के मुंह से अक्सर वह सुना करता है कि बच्चे वाले घर में अंधेला कभी नहीं रहना चाहिए ... बाहर घुप्प् अंधेरा है। बीच-बीच में कहीं दूर से रुक-रुक कर सीटी की आवाज सुनाई पड़ रही है। एक बार रात में पेशाब के लिये जब उसकी नींद खुली थी तो उसने यह सीटी की आवाज पहली बार सुनी थी। रात में सीटी कोन बजा रहा है, कहकर उसे एक जिज्ञासा सी हुई थी। यह सीटी गोरखा बजा रहा है, उसे पिताजी से मालूम पड़ा था। तब गोरखा को देखने की अजीब सी उत्कंठा उसके मन में उठी थी. गोरखा कैसा होता है? रात में अकेले घूमतें हुए उसे डर नहीं लगता है क्या? रात में उसको नींद नहीं आती है क्या? भूत-प्रेत उसको नहीं पकड़ते हैं क्या? ढेरो प्रश्न! और उसकी इस उत्कंठा को शांत करने के लिये एक बार रात में बारह बजे तक जागकर पिताजी ने उसे गोरखा के दर्शन कराये थे। उस दिन ही उसे पता चला कि गोरखा तो अपने जैसा ही एक जीता-जागता इंसान है। पिताजी ने उस दिन समझाया था कि भूत-प्रेत नाम का कुछ नहीं होता है। यह तो बस मन का भ्रम मात्र है।

और गोरखे के बारे में सोचते हुए उसे फिर से पिताजी की याद आ जाती है। मन फिर उदास हो जाता है। पिताजी किस तरह उसे अपने बायें हाथ के घेरे में लपेटे सोये रहते थे। उस घेरे में

कितना सुरक्षित महसूस करता था वह अपने-आप को। सब कुछ भूलकर कितनी मीठी नींद में सोया करता था वहाँ पर, अब.... ?

फिर से लेट जाता है। खिड़की से पीपल के पत्तों का चीत्कार अभी भी सुनाई पड़ रहा है। करवटें बदलता रहता है। नींद उसे बिल्कुल नहीं आती है। उस रात भी तो अचानक शोर से उसकी नींद टूटी थी। पर वह शोर पीपल की पत्तियों का नहीं बल्कि मां की सिसकियां का था। मां खाट पर बीचों-बीच घुटनों में चेहरा दबायें लगातार सिसकियाँ भरती रो रही थी। .... 'तो क्या पिताजी ने उसे मारा है?'

वह गुमसुम उसी तरह लेटा रहा-'देख लता! तू अच्छी तरह से जानती है कि मेरे यहाँ पर रहने से वो लोग कदापि मुझे छोड़ने वाले नहीं है।... और तेरे को यह भी मालूम है कि मेरे बढ़े हुए कदम अब किसी भी हालत में पीछे हटने वाले नहीं हैं। मेरा अब यहाँ रहना किसी भी तरह संभव नहीं है.... ।' और भी न जाने क्या-क्या कहते हुए समझा रहे थे पर उनकी एक बात भी उसके पल्ले नहीं पड़ी थी। मां पर भी इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा लग रहा था। लगातार सिसकियाँ भर रहीं थी।

'अब रात बहोत हो गई है। सो जा, सुबह जल्दी उठना है' कहते वे उसके बगल में लेट गये थे। वह गुमसुम नींद का बहाना किये उसी तरह लेटा रहा था। वे उसके सर के बालों पर अंधेरे में बहुत देर तक हाथ फेरते रहे थे। मामला उसके बिल्कुल समझ में न आ रहा था। माँ लगातार सिसक रही थी।

'पिताजी क्यों मां को इस तरह रुला रहे हैं? पिताजी अच्छे नहीं हैं पिताजी गंदे हैं' ......वह मन ही पिताजी को कोस रहा था। पर पिताजी अच्छे नहीं है तो क्यों इतने प्यार से उसके सर

www.eTelangana.org

को ऊँगलियों के पोरों से सहला रहे हैं? बीच-बीच में क्यों उसे चूम रहे हैं? ..... और फिर कुछ देर बाद पिताजी ने हमेशा की तरह बायें हाथ का घेरा उस पर डाल दिया था। कैसी सम्मोहन शक्ति थी उस घेरे में कि वातावरण इतना तनावपूर्ण होने के बावजूद पलकें उसकी भारी होने लगी थीं और हमेशा की तरह कब वह निद्रा के आगोश में समा गया था उसे मालूम ही नहीं पड़ा।

और चिड़ियों की चहचहाट से जब उसकी नींद खुली तो उसने अपने आपको खिड़की के रास्ते सूरज की सुनहरी किरणों से बिंधता पाया।

मां चौखट पर उदास बैठी हुई थी। पिताजी का बिस्तर खाली था। इधर-उधर नजरें घुमा कर उन्हें देखने की कोशिश किया पर वे दिखलाई नहीं दिये। सहसा उसे रात वाली घटना की याद आ गई। अनजाने में ही वह सिहर उठा था। 'मां पिताजी कहाँ गये?' उसने नजरें उठाकर उसकी तरफ देखा था। 'बाप रे बाप'। कैसा सूनापन था उन आंखो में।' जवाब देने के बजाय उसने उसे छाती से चिपटा लिया था जोरों से।

बाहर गली में कुत्ता लंबे सुर में रो रहा है। नींद उसकी आंखो से कोसों दूर है। उसे पिताजी की याद आने लगती है। जब से बायें हाथ का घेरा उस पर से गायब हुआ है तब से आज तक वह कभी बराबर नहीं सो सका है। तब से एक अजीब सा सूनापन अपने अंतर में समाया महसूस करता है। ठीक वही सूनापन जो पिताजी के बारें में पूछने पर मां की आंखों में उभर आता है। कितना डर लगता है उसे मां के इस सूनेपन से। इसी सूनेपन के चलते ही तो वह जिद करके पिताजी के बारे में पूछने का साहस आज तक नहीं कर पाया है। पिताजी का अचनाक गायब हो जाना

उसके लिये एक अनबूझ पहेली ही रहा है।

पिताजी का भोला-भाला चेहरा बार-बार उसकी आंखों के सामने आता है। पर इस भोले-भाले चेहरे के पीछे कितनी दृढता थी इस बात का पता उसे उस दिन पड़ा था जिस दिन खून में सने उनको तीन चार लोग उठाकर लाये थे। उनके सर पर पट्टी बंधी हुई थी। खून से भीगी हुई पट्टी। मां उनको देखते ही जोरों से रो पड़ी थी। वह स्वयं भी दहशत से भर उठा था।

उन लोगों ने पिताजी को खाट पर लिटाया था। वे कराह रहे थे। पर इस कराहट के बीच भी उनकी बड़बड़ाहट बराबर जारी थी। 'कामरेड़ मेरी फिकर मत करो'.... 'मुझे कुछ नहीं होगा...' 'तुम लोग जाकर वहाँ मोर्चा संभालो....' इस अवस्था में भी कितनी दृढ़ता थी उनके चेहरे पर।

पिताजी को लाने वाले ये लोग अक्सर घर पर आया करते थे। पिताजी के साथ घंटों बैठकर बातें करते थे... सलाह-मशविरा करते थे। वह पिताजी की बगल में बैठा उनकी बातें सुनता रहता पर एक बात भी उसकी समझ में न आती थी।

इस घटना के पहले वाले रात में भी तो वे लोग हड़ताल, घेराव और न जाने क्या-क्या कहते हुए बातें करते रहे थे। उनकी बातें सुनते हुए वह पिताजी की गोद में ही सर रखे सो गया था। वे लोग कितनी रात तक बातें करते रहे थे इसका पता उसे न पड़ा था।

करवटें बदलता रहता है। पीपल उसी तरह बेचैनी से शोर कर रहा है। वह फिर से उठ बैठता है। खाट से उतरकर ढिबरी की लौ तेज करता है। मां की तरफ देखता है। अभी भी थकान भरी नींद में है।

कोने में रखे लकड़ी के बक्से के पास जाता है। यह

www.eTelangana.org

पिताजी के किताबों का बक्सा है। जब भी उसे पिताजी की याद आती है अक्सर वह बक्सा खोल किताबों को हाथ में लेकर देखने लगता है। इससे न जाने क्यों उसे एक तरह की तृप्ति सी मिलती है।

एक किताब निकालता है वह, लाल-लाल मोटी सी। अपनी कोमल उंगलियाँ उस पर फेरता है। किताब खोलता है, पहले पृष्ठ पर ही एक बूढ़े का चित्र। घने अधपके बालों वाली दाढ़ी.... प्रभावशाली चेहरा। उसकी आंखों में उसे पिताजी की भोल-भाली आंखे दिखलाई देती है। बहुत देर तक वह उस चेहरे को निहारता रहता है। इसके बाद वह फिर पन्ना पलटता है। अगले पृष्ठ पर कोट पहना गंजा आदमी। तना हुआ लम्बा चेहरा। चेहरे पर दृढ़ता है। बिल्कुल वही दृढ़ता जो पिताजी के चेहरे पर उसे उस दिन दिखलाई दी थी जब सर फट जाने के बाद भी किसी तरह वे विचलित नहीं हुए थे।

वह एक किताब और निकालता है। पतली सी किताब है गीतों की। पिताजी इसमें ही देखकर गीत गाते थे। कितनी मधुर आवाज थी उनकी। उस दिन भी वे उसी तरह गला फाड़कर गा रहे थे। वह भी उनकी सुर में सुर मिला कर गा रहा था। अचानक वह पानी पीने के लिए अन्दर रसोई में गया। माँ वहाँ पर हिचकियाँ लेती हुई रो रही थी। वह क्यों रो रही थी? आज तक उसकी समझ में नहीं आया है। कितनी सारी अनबुझ पहेलियों से घिरा है वह।

माँ अर्ध निद्रा में बगल में उसके लिये टटोलती है। उसे न पा अचानक उठ बैठती है। इतनी रात में बेटे को बक्से के पास बैठा देख उसे आश्चर्य होता है। वह चुपचाप उठकर उसके पास चली आती है।

"बेटा क्या कर रहा है इतनी रात में यहाँ?"

वह आश्चर्य से माँ की तरफ देखता है। क्या कहे उसे नहीं सूझता है। "नींद नहीं आ रही हैं इसलिए पिताजी की किताबें देख रहा हूँ।"

माँ बैठ जाती है उसकी बगल में। उसका हाथ अनायास ही उसके सर पर पहुँच जाता है। वह उसके बालों को सहलाने लगती है। वह माँ की गोद में सर रखकर लेट जाता है।

"पिताजी कहाँ गये माँ?"

पीपल के पेड़ पर कोयल की पहली कूक सुनाई पड़ती है। "वो एक नई सुबह लाने गये हैं बेटा।" आज पहली बार माँ के बोल फूटे थे।



रविवारी आवाज (धनबाद)

७ जून १९९२

www.eTelangana.org

बूढ़े की मौत



काकतीय एक्सप्रेस ने तेजी पकड़ ली है।

सामने के सीट पर वह बैठी हुई है। वह, यानी राघव की बहन। आँखों में सूनापन। कैसे बात करे उससे, उसे कुछ नहीं सूझता है।

"अब ज्यादा सोचने से कोई फायदा नहीं है। पिताजी वापस आने वाले तो है नहीं। और एक मायने में अच्छा ही हुआ समझो। उन्हें तकलीफ से छुटकारा मिल गया।" ऐसी परिस्थितियों में सांत्वना के लिए कही जाने वाली बातें उसने भी कह दी थी।

पिताजी यानी खाट पर पड़ा हुआ हड्डियों का ढ़ाँचा-मात्र, बदन का आधा हिस्सा लक़वा ग्रस्त।

संजय कभी-कभार उनके घर मिलने चला जाता था। उसे बूढ़े की हालत पर तरस आता था। उसे देखते ही बूढ़े की आँखे भर आती थीं। हकलाती आवाज में कहता- बेटा मैं इस ज़िंदगी से तंग आ गया हूँ। ये हरामज़ादे मुझे मरने भी नहीं देते हैं।

'कैसे मरने देंगे- नोट छापने वाली मशीन जो हो,' वह भी मन ही मन सोचता था।

बूढ़े को इस तकलीफ से छुटकारा पाये करीब पंद्रह-सोलह दिन हो रहे हैं। खबर सुनते ही उसने सोचा था - 'चलो अच्छा ही हुआ।'

राघव की बहन यानी पार्वती। आँखों में भर आये आंसू को छिपाने के लिए खिड़की पर चेहरा सटाये बाहर की तरफ तेजी से भागती प्रकृति को ऐसे देख रही है मानों कहीं अतीत में निहार रही हो।

संजय को लगा, उसने सात्वना के रटे-रटाये खोखले शब्द कहकर अच्छा नहीं किया। शायद ऐसा कहकर उसने उसकी दुखती रग को और छेड़ दिया है।

स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही, चूंकि सुबह का समय है, रोज की तरह चाय, कॉफी वालों की हॉक आरम्भ हो चुकी थी। उसे मालूम है पार्वती को चाय की बहुत ही आदत है। पर इस मौके पर लेगी या नहीं, पता नहीं। पूछना भी ठीक रहेगा या नहीं, उसे समझ में नहीं आता है।

"पारु, चाय पिओगी?"

उसे घर में सब पारू ही कहते हैं। इसलिए वह भी पारू ही कहता है।

वह कुछ नहीं कहती है।

वह दो कप चाय ले लेता है। उसकी तरफ बढ़ाता है। वह अस्वीकार नहीं करती है। चाय लेकर खिड़की से बाहर झाँकती हुई ही पीने लगती है।

ट्रेन ने सीटी दे दी है। पहिए चरमराते हुए सरकने लगते हैं।

www.eTelangana.org

वह अपनी चाय समाप्त कर डिस्पो कप बाहर फेंक देता है। अधनंगे बदन वाले दो छोकरे उस कप पर तेजी से झपटते हैं।

रोज की तरह उसने शेड़ में ही ट्रेन में चढ़ कर अपनी इकसठ नम्बर वाली सीट पर कब्ज़ा कर लिया था। जब गाड़ी प्लेटफार्म पर पहुँची तो उसने देखा था कि राघव और पारू दोनों ट्रेन में चढ़ने के इंतजार में खड़े हुए हैं।

उन्हें देखते ही उसने अपनी रुमाल और लंच का डिब्बा वाला बैग डालकर उनके लिए अपने सामने वाली सीटें रोक ली थीं। पारू आकर बैठ गयी थी। पता चला की राघव ट्रेन चढ़ाने के लिए आया था। बिठाकर चला गया।

बूढ़े की तेरहवीं चार-पाँच दिन पहले ही हुई थी। क्रिया-करम में हिस्सा लेकर लौट रही थी पारू, वापस अपनी ससुराल।

'अपने साथ बूढ़े की कितनी याँदे लेकर लौट रही होगी।' वह मन ही मन सोचता है।

पर बूढ़े से जुड़ी कुछ-कुछ बातें तो उसके जेहन में भी है।

वह अपना सिर पीछे की ओर टिकाकर आँखे बन्द कर लेता है। ट्रेन अपनी गति में चली जा रही है। बदन एक लय में झूल रहा है। बूढ़े की यादें कहीं अतीत में खींच ले जाती हैं-

सैकड़ों की उत्तेजित भीड़.... आँसू गैस और लाठी चार्ज से भी अनियंत्रित... बंदूकों ने अपने मुख खोल दिए हैं.... धाँय-धाँय...... शोर-शराबा...... चीख-चिल्लाहट...... भागम-दौड बारह साल का एक छोकरा खून में लथपथ सड़क पर गिर कर तड़पने लगा है।

संजय का चेहरा दहशत से भर उठता है। इतनी सुबह

सर्दी में भी उसके माथे पर पसीने की बूँदे फूट पड़ती हैं। उसे ऐसा लगता है मानों यह घटना अभी-अभी उसके सामने गुजरी हो। इतने वर्षो के बाद भी यह घटना ज्यों की त्यों उसके जेहन में समायी हुई है। जब भी याद आती है उसका यही हाल होता है। इस कारण याद करने से वह कतराता है। वह भी तो उस वक्त उस जुलूस में शामिल था। कॉलेज में पढ़ता था। पॉलिटिक्स से उतना टच नहीं, फिर भी उत्साह में साथियों के साथ आ गया था।

घुमावदार पटरियों पर भागती ट्रेन थर-थर काँप रही थी।

....और बूढ़ा यानि राघव का पिता इसी राजेश्वरी कांड में जुड़ा एक नाम। खाकी युनिफार्म में सिविल पुलिस का हेड कांस्टेबुल....।

यह घटना उस समय की है, जब नक्सलबाड़ी की उत्तेजना से प्रेरित श्रीकाकुलम के जंगल में भभकी आग शांत हो चुकी थी, परंतु जिसकी छोटी सी चिनगारी कहीं सुलगती हुई रफ्ता-रफ्ता उत्तरी तेलंगाना के गाँवों को अपनी चपेट में ले सिंगरेनी कोयला खदानों तक पहुंच चुकी थी और बेल्लमपल्ली में माफ़िया गैंग का दिन-दाहड़े सफाया कर कोयला खदानों में अपना बेस बनाने का प्रयास कर रही थी।

"पिताजी थे तो आना जाना था" पारू कहती है, तो उसके विचारों को ब्रेक-सा लगता है। वह चौंक पड़ता है। उसने तो सोचा था कि सिकन्दराबाद जाने तक बात ही नहीं करेगी।

"क्यों राघव और श्रीनू है न?"

"कहने को तो भाई हैं, पर क्या उनका व्यवहार तुमसे छिपा है?" वह पहली बार उसकी आँखो में झाँकती हुई सीधा पूँछती है।

हाँ, उनके व्यवहार से तो वह भी वाकिफ़ है। पर क्या

www.eTelangana.org

जवाब दे, उसे कुछ नहीं सूझता है। कुछ नहीं कहता है। उसे पता है परिवार में वह अकेली ही है, जो बूढ़े के अंतरंग से जुड़ी हुई थी।

"पिताजी ने पिंजड़े में बंद तोते की तरह कितना नरक भोगा है वहाँ।" पिंजड़े में बंद तोते की तरह ही वह खिड़की की सलाखों से बाहर निहारती कहती है।

'पिंजड़े में बंद तोते में तो कम से कम एक छटपटाहट होती है। सीकचों से भाग निकलने की एक चाह होती है, परंतु बूढ़े में तो वह भी मर चुकी थी। बस जिंदा था या फिर कहें तो ज़िंदा रखा जा रहा था....।' वह सोचता है।

'इस भरी दुनिया में कोई हमारा न हुआ....' दोनों पाँव कटे, रबड़ की शीट पर घिसटते भीख मांगने वाले अधेड़ अपाहिज के गाने की धुन सारे कंपार्टमेंट में गूंज रही है।

स्टेशन पर गाड़ी रुकती है। अपाहिज का गाना भी समाप्त हो जाता है। दरवाजे पर उतरने और चढ़ने वालों में धक्कम्-पेल चल रही है।

दूसरी तरफ चौथी लाइन पर ओपन वैगन में कोयले से भरी गुड्स ट्रेन। 'सिंगरेनी खदान के कोयले ही तो हैं। न जाने किन-किन कामगारों ने ज़मीन के भीतर, अँधेरे कोनों से इन्हें खोदकर निकाला है, न जाने ये कहाँ जाएँगे- न जाने, किस भट्टी में झोंक दिये जाएँगे।' वह सोचता है। उसकी सोच का कोई सर-पैर नहीं रहता है। जो भी कुछ सामने आता है उसी के बारे में सोचने लगता है। उसकी सारी यात्री इसी तरह सोच में ही तो कटती है।

"दोनों भाइयों ने पिताजी को बाँट लिया था... एक महीना इसके पास तो दूसरा महीना उसके पास...." वह फिर कहती है।

इस बात का उसे भी पता था।

"दोनों यही सोचते थे कि पिताजी ज्यादा दिन उनके-अपने पास ही रहे।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है। भला आज के ज़माने में बूढ़े माँ-बाप के बारे में ऐसा कौन सोचता है। धक्के मारकर बाहर निकाल देते हैं।" बेटों द्वारा धक्के मारकर बाहर निकाले जाने-सी लगने वाली पार्वती की बग़ल में बैठी अधेड़ उम्र की औरत उनके वार्तालाप को सुन बीच में ही कहती है।

पारू उसकी तरफ कनखियों से देख चुप हो जाती है। संजय हाथ बढ़ा चुप रहने का ऐसा संकेत करता है मानों कह रहा हो - "तुम्हें कुछ पता नहीं है। बात कुछ और ही है।"

सिग्नल न मिलने वाली ट्रेन की तरह बुढ़ी चुप्पी साध लेती है।

पारू बताती है कि हर महीने की पहली तारीख को दोनों भाइयों में से उस भाई के घर का सारा माहौल किस तरह रंगीला हो जाता था, जिस घर में वह बूढ़ा रहता था। किस तरह का उत्साह रहता था परिवार के सभी सदस्यों में। सभी का प्यार उमड़ पड़ता था उस बूढ़े पर। किस तरह भइय्या और भाभी उसे नहलाते थे। अच्छे कपड़े पहनाते- खाट पर चादर बदलते। किस तरह दीवार की घड़ी दस का घंटा बजाते ही दरवाजे के सामने ऑटो आकर रुकता- किस तरह भाभी और भइय्या उसे सहारा दे ऑटो तक ले जाते.....

और ये सब बातें बताते हुए उसके आँसू बहने लगे थे। दूसरे न देखें इसलिए उसने चेहरा खिड़की की तरफ ही कर लिया था। संजय सोचता है लोग सही ही कहते हैं- 'मरने पर रोने के

www.eTelangana.org

लिए कम से कम एक बेटी का होना ज़रूरी है।'

और यह बेटी तो आज मौत पर ही नहीं रो.....रही है, बल्कि पिछले कई वर्षो से रो रही है, जबसे बाप अपाहिज बना था।

और वह अपाहिज कब बना था? इस ख्याल के आते ही वह फिर से फायरिंग वाली घटना पर आ जाता है। इस घटना का केंद्र बिंदु थी राजेश्वरी। राजेश्वरी यानी नौकरी की तलाश में दूर-दराज के गाँव से आये एक मजदूर परिवार की एकलौती जवान बेटी। संदेहास्पद स्थिति में हुई उसकी मौत। कामगारों का मानना था कि यह आत्महत्या नहीं, हत्या थी। खदान के जाने-पहचाने जिस अधिकारी के मोटर शेड़ में ये रहते थे उसी अधिकारी के जवान बेटे द्वारा उसका मान भंग कर, हत्या कर, आत्महत्या का खेल रचा गया था। -एक अजीब आक्रोश था। खदान कामगारों में। और इसका फायदा उठाया था नक्सलाइटों ने।

ट्रेन की खट्-खट् तेज हो चुकी थी।

और फिर निकला था आक्रोश प्रगट करता हुआ एक जुलूस। जैसे-जैसे जुलूस बढ़ता गया वैसे-वैसे खदान में कोयले से भरे टबों के एक के बाद एक जुड़ने की तरह लोग जुड़ते गये थे। भीड़ बेकाबू सी होती चली जा रही थी। और साथ ही राघव के पिता पर फायरिंग का आर्ड़र देने के लिए दबाव बढ़ता गया। राघव का पिता यानि हेड कांस्टेबुल। सब-इंस्पेक्टर की अनुपस्थिति में सारा भार उस पर ही।

निःसहाय सी अवस्था में उसका आदेश देना था कि अर्ध सैनिक बल टूट पड़ा था लोगों पर।

काकतीय एक्सप्रेस, बंदूक़ से निकले बुलेट की तरह

पटरियों पर भाग रही है। गिट्टी के छोटे-छोटे टुकड़े हवा में उछल रहे हैं।

लड़के की मौत से भीड़ और ज्यादा बेकाबू हो गयी थीं।

पारू के चेहरे पर विषाद छाया हुआ है। संजय की दृष्टि बगल वाले रेल्वे ट्रैक पर है। दोनों पटरियों के बीच की दूरी कम हो कोयला खदान में टबों के लिये बनाये गये मीटर गेज पटरियों सी लग रही थीं।

मौका पाकर लड़के की मौत का सारा गुस्सा निकला राघव के पिता पर। कुछ युवकों ने उसे घेर लिया था। कुछ ही क्षणों बाद वह औंधा जमीन पर पड़ा था।

-और इसके बाद खाट ही उसकी जिंदगी का हिस्सा बनकर रह गयी थी। सारा शरीर लकवा ग्रस्त हो गया था।

केवल हर पहली तारीख को खाट से उसे उठाया जाता। सहारा दे ट्रेजरी तक ले जाया जाता। वाउचर पर हस्ताक्षर लिया जाता। नोटों की गड्डी की छीना-झपटी होती। कभी राघव के हाथ पड़ती तो कभी श्रीनू के। मरते दम तक हर महीने सारी की सारी तनख्वाह की मंजूरी मिली थी उसे।

"कल रात राघव भैया, भाभी से कह रहे थे- बूढ़ा एक दिन और जिंदा रहता तो एक महीने की तनख्वाह और मिल जाती।"

"बाप नहीं रुपया छपने की मशीन था उनके लिए।" संजय के मुख से निकलता है।

"जानते हो उनकी मौत कैसे हुई थी?" वह पूछती है।

संजय 'नहीं' में सिर हिलाता है।

कुछ देर की चुप्पी। दोनों में से कोई कुछ नहीं कहता है।

www.eTelangana.org

"राघव भैय्या के घर के पिछवाड़े में, खुले में बावड़ी के पास डाली हुई थी उनकी खाट। रात में भी वहीं रहती थी।"

"बाप रे इतनी ठंड में" उसके मुँह से निकलता है।

"ठंड से उनका बंदन अकड़ गया था। हगना-मूतना सब उसी में। कोई साफ करने वाला नहीं। पीठ पर इत्ते बड़े-बड़े बेड-सोर हो गये थे। कीड़े बिलबिला रहे थे। जानवरों से बदतर थी उनकी हालत।"

"च् च् च् च् क्या हालत हो गयी थी बेचारे बूढ़े की।" वह कहता है।

"मैंने झिंझोड़ा तो आँखें खोली भी उन्होंने। बहुत देर तक पहचाना ही नहीं। वैसे ही देखते रहे। जब पहचाना तो आँखों के कोर से आँसू बहने लगे थे। - और दूसरे ही क्षण आँखे वैसे ही स्थिर हो गयी थीं।"

ट्रेन अपनी यात्रा के अंतिम चरण में पहुँच चुकी थी।

"शायद मुझे देखने के लिए ही वे ज़िंदा थे।" इस बार वह अपने आपको रोक नहीं पायी थी। जोरों से सिसक पड़ी थी।

"आखिर हम तो इंसान है न। जानवर तो नई हैं। उनके भी बेटे नई है क्या? कभी उनकी यह गत नई आयगी क्या?" पारू के बग़ल में बैठी बूढ़ी अपने आप को रोक न पा, कहती है।

काकतीय एक्सप्रेस हाँफती हुई प्लेटफार्म पर पहुँच रही थी।

❁ ❁ ❁

दक्षिण समाचार
५ जनवरी २०००

पोस्चर से हट कर



खर्‌....खर्‌....खर्‌.....खर्‌..... वह अपने डावें जंघे को डावें हाथ से लगातार खुजलाता है।

और यह उसकी आदत है। पुरानी आदत। कब से आयी है यह आदत उसे पता नहीं है।

कद लंबा है. टांगें और भी लंबी, शुतुरमुर्ग की टांगों की तरह. खाकी मैली-कुचैली ढीली-ढाली पेंट. टांगे जितनी पतली, पेंट उतनी ही ढीली. पेंट में बेल्ट वाली जगह पर कसकर बंधी हुई सुतली कहीं फिसल न जाय इस डर से. जब भी वह खुजलाता है डावीं टांग खूंटे की तरह सीधी तनकर खड़ी हो जाती है और दायीं कुछ ढीली. डावां हाथ भाप इंजन के पिस्टन की तरह जल्दी-जल्दी आगे-पीछे चलने लगता है. यही उसका पोस्चर है.

हर दो मिनट बाद उसका खुजलाना जरूरी है. उसकी यह खुजलाहट कोई नहीं रोक सकता है। हाँ, उसका नाम शेख पाशा है।

इस समय वह अपनी हवेली में है. हां, अपनी इस झोपड़ी

www.eTelangana.org

को वह हवेली से कम कभी नहीं समझता है. इस हवेली का शहंशाह है. शहंशाह से ज्यादा तानाशाह. यहाँ बस उसका राज्य ही चलता है. हवेली के बीचों-बीच अपने स्टैंड्र्ड पोस्चर में खड़ा है।

सर्चलाइट की तरह की उसकी आंखें शिकार की तलाश में घर का चप्पा चप्पा छान मार रही हैं. सर्चलाइट का फोकस छत पर पड़ता है- धुएँ से काले पड़ गये भांसे, नाँट, चखले .... भांसों से दो सिरों पर रस्सियों के सहारे लटकता बंबू.... उस पर फटा पुराना बुरखा.... एक दो पुरानी साड़ियाँ..... गहरे हरे... लाल रंगों वाले दो-तीन दुपट्टे... धारियों वाले बेढ़ंगे अंडरवेयर.... मटमैला फटा लहंगा.... सब अस्त-व्यस्त दशा में. ये सब उसके कुछ काम के नहीं है. ...कुछ हटकर छत से लटकता छींका. उसमें एल्मुनियम के दो पिचके भगौने.... "लौंडिके इत्ता ऊपर बांधे भी तो नई छोड़ते हैं. बिल्ली से ज्यादा आफत तो इन छोकरों से है. कब कौन हंडी साफ कर जाता है मालूम ही नई पड़ता है." वह अपने-आपमें ही बुदबुदाता है।

फोकस छींके पर से हटकर चूल्हे की तरफ बढ़ता है. मिट्टी का चूल्हा, बगल में राख का ढेर... उस पर अंडे और प्याज के छिलके, चौलाई भाजी के डंठल.... पास ही दो-तीन तामचीनी के रकाबी... दो तीन कटोरे.

अब सर्चलाइट का फोकस उल्टी दिशा में घूमता है. मिट्टी से बनी दीवार पर एक तस्वीर. तस्वीर में बड़ी-बड़ी घनी दाढ़ी वाले लुंगी पहने तसरीफ रखे ताजुद्दीन बाबा. एक आधे-फटे कैलेंडर में अल्लाताला से दुआ मांगती एक जनाना. कोने में नीचे काला पड़ा बाबा आदम के जमाने का लकड़ी का संदूक.

और इस संदूक पर नजर पड़ते ही उसमें कुछ हरकत-सी

होती है. बाहर से किसी जनाना के बड़बड़ाने की लगातार आवाज आ रही है. उसको अच्छी तरह मालूम है, यह बड़बड़ाहट उसे सुनाने के लिए ही की जा रही है कहकर. पर इसका कुछ भी असर उस पर नहीं पड़ता है. शायद आदत सी हो गयी है उसको.

और यह बड़बड़ाने वाली जनाना उसकी बेगम है. दरवाजे तक आकर टाट के परदे के सुराख से बाहर झांकता है. वह झोपड़ी के बाहर आंगन में पीपल के पेड़ के नीचे उकडूं बैठी छोटके का मुंडन कर रही है.

आंगन सीधा सड़क से जुड़ा है. आंगन और सड़क के बीच कोई गोसा पर्दा नहीं है. पीपल के पेड़ पर गौसे आज्म का हरे रंग का झंडा.

छोटका उसके सामने सर झुकाये बैठा है. रेजरपत्ती को उंगलियों में पकड़े पानी के चंबु में बार-बार डुबोती उसकी चिकनी मुंडी कर रही है. रेजरपत्ती के चलने के साथ ही सर का वह हिस्सा गिलट के पतीले की तरह सफेद उभरता जा रहा है. छोटके को ऐसा महसूस होता है मानो अम्मी मुंडन नहीं कर रही है बल्कि कुम्हड़ा छील रही है.

गर्दन और कनपटी पर बहते गंदले पानी का चिपचिपापन..... कतरे हुए बालों की चुभन.... रेजरपत्ती के सिर पर रेंगने की जलन और उस पर लगातार झुकी हुई गर्दन..... बार-बार मुंडी उठाने की कोशिश करता है पर वह है कि खीझ में मुंडी को पकड़कर फिर से दबा देती है. मुंडी के दबाने के साथ ही चूतड़ ऊपर उठाकर स्प्रिंग की तरह दूसरे ही पल अपनी जगह पर फिर से आ जाता है.

पांच-छः बच्चे घेरे में खड़े तमाशा देख रहे हैं.

"अरे थोड़ा बाजू सरको न रे तुमारे मूं में मट्टी पड़े .... पूरा

www.eTelangana.org

अंधेला करके रख दिया है. उजाला छोड़ो. यहाँ लड्डू बंट रहा है क्या?"

"ये जरीना तू हट न..."

"तू ही तो आड़ा है...."

"बाजू हट न...."

'तू-तू'.... 'मैं-मैं' के साथ बच्चों में कुछ हलचल. कुछ खुद हटते हैं. कुछ दूसरों को कुहनी मारकर हटाते हैं. पूरी रोशनी छोटके के चिकनी होती मुंडी पर पड़ती है, पर दूसरे ही क्षण कुत्ते की दुम की तरह बच्चे फिर से अपने पहले वाली दशा में आ जाते हैं.

बड़के का मुंडन पहले ही हो चुका है. उसके सर पर कहीं-कहीं फोड़े हैं. कटकर खून निकल रहा है. छोटके के सर पर भी बालों के साफ होने के साथ ही फोड़े दिखलाई दे रहे हैं.

"अम्मी जल रहा है....."

"तो क्या करूं...... तमाम सर में फोड़े हो गये हैं. कीड़े पड़ गये हैं कीड़े. जलेगा नई तो और क्या होगा?" उठी मुंडी को फिर से खीझ में दबा देती है।

"बोत जल रहा है अम्मी...."

"जल रहा है तो क्या नमक मिर्च छिडकूं उस पर.... ये घर जले, इस घर में तो वो भी नई है. घर में साबुन नई है, तेल नई है, फिर फोड़े नई होंगे तो और क्या होगा".... फिर से मुंडी दबाती है. छोटका कराहता है.

शेख पाशा की तरह यह भी दुबली-पतली औरत है. पुरानी सी साड़ी लपेटे. लंबाई में बस उससे कुछ उंगली ही कम. ऐसा लगता है मानो किसी ने खूटे को साड़ी लपेटकर रख दिया हो.

लोग इन दोनों की जोड़ी देखकर कहते हैं- 'आह! क्या जोड़ीं बनायी है अल्लाताला ने इन दोनों की. नाप-तौलकर लगता है एक-दूसरे के वास्ते ही बनाया है. खुदा इन दोनों की जोड़ी सलामत रखे.'

"सुअरों की तरह इतने सारे बच्चे जनकर छोड़ दिया है मेरी जान पर. जब पालने की ताकत नई है तो क्यों पैदा किया..... मर्दानगी बताने के वास्ते? इतने बच्चों का बाप बोलते छाती फूल जाती है ना शान से? ..... वाह मरद की छाती..... कितनी मर्दानगी है. बच्चे पैदा करना जानते हैं, पालना नई. हज्जाम के पास ले जाकर चिकनी हंडी कराने तक की ताकत नई है, बड़ा मरद बनता है."

कारखाने के मशीनों के कानफोड़ आवाज के आदी होने की तरह उसकी बड़बड़ाहट सुनने का भी वो आदी हो गया लगता है. इसका कुछ भी असर उस पर नहीं पड़ता है.

फिलहाल वह संदूक सदरने में व्यस्त है. छोटके का मुंडन हो चुका है. उठकर खड़ा हो जाता है. चिकनी हंडी पर फोड़े और जहाँ-तहाँ अनकटे बाल. लगता है मुर्गी का पंख उधेड़कर छोड़ दिया गया हो. चेहरे पर आये भावों से लगता है मानों मुंडन से नहीं पुलिस के थर्ड डिग्री टार्चरिंग से मुक्ति मिली है. 'चिकनी मुंडी चने की दाल-मार जूता उड़ गये बाल'- कहते बच्चे ताली पीटते हुए उसे चिढ़ाने लगते हैं. रूआसा सिर पर हाथ फेरता है. जब चिढ़ाना बरदाश्त से बाहर हो जाता है तो गुस्से में मुट्ठी बांधकर घूंसा मारने उनकी तरफ बढ़ता है. बच्चे भागते हैं और, चिढ़ता देखकर दूर खड़े होकर और चिढ़ाने लगते हैं.

अब नंबर तीन की बारी है. वह कौन है पता नहीं.

www.eTelangana.org

अम्मी को बच्चों का शोर सुन गुस्सा आता है. "क्यों बोमड़ी मारते हो रे. सब मेरी जान लेने पर बैठे हुए हो. जरीना तू बैठ."

अपना नाम सुनते ही जरीना का चेहरा दहशत से भर उठता है. ठीक वही दहशत जो अपने सामने ही किसी दूसरे का टार्चरिंग देखता है और अब अपनी बारी आने पर उसके अपने चेहरे पर होती है.

"अरे बड़के खड़ा-खड़ा मेरी सूरत क्या देख रहा है. जाकर इस चंबू में पानी ला" खीझ में बचा हुआ पानी फेंककर खाली डिब्बा उसके हाथ में थमा देती है.

आंगन में दायीं तरफ टाट की बोरियों की आड़ से बना हमामखाना. टाट में जहाँ-तहाँ सुराखें, नहाते बखत सुराखों में से झांकते हुए पेरिस्कोप की तरह अगल-बगल के सारे कारनामों से वाकिफ होने की सहूलियत.

"अरे उस डुक्कर को मार रे. इसकी माँ का डुक्कर माँरू ये भी हमारी जान पर बैठा है." हमामखाने के बदबूदार कीचड़ में डुक-डुककर खाना ढूंढते सुअर को देखकर कहती है.

बड़का एक बड़ा सा ढेला उठाकर मारता है. ढेला उसको न लग कर कीचड़ में छपाक् से गिरता है. कीचड़ लगे दुम को शान से हिलाता, सड़क पर धार-सा बनाता सुअर, शेर की तरह आराम से डुक-डुक करता प्रस्थान करने लगता है.

बड़का पानी ले आता है. जरीना अभी तलक नहीं बैठी है. "जरीना चल बैठ" आंखें तरेरती है.

फिर भी नहीं बैठती है. "बैठती है कि आऊं?"

वह ऊं-ऊं कर पैर पटकती रोने लगती है. "तो तू सीधी

तरह से नहीं बैठेगी."

वह उठती है. जरीना भागने लगती है. "अरे उस रांड को पकड़ो रे....."

वह भी उसको पकड़ने की लिए भागती है.

पूरी पलटन जरीना के पीछे भागती है. बड़का सबसे आगे है. जाकर जरीना को पकड़ लेता है. वह भी वहां पहुँच जाती है. चेहरा गुस्से से तमतमाया हुआ है.

"हरामजादी, कुतिया, बोत मुजोरी चढ़ गयी है. देख तेरी मस्ती निकालती हूं" कहती उसके दोनों हाथ अपने कंकाल जैसे दुबले-पतले लंबे एक हाथ से पकड़कर दूसरे से तड़ातड़ दो तीन तमाचे जड़ देती है.

"नई अम्मी.... नई अम्मी..... बैठती हूँ. अम्मी..... बैठती हूँ अम्मी," जरीना मार से बचने के लिए-चीखती-चिल्लाती है. सड़क पर खाकी यूनिफार्म में नाल लगे सेफ्टी शूज से टक्-टक् की आवाज करता जाता एक वर्कर उसको मारता देखकर-"क्या अम्मा! छोकरी को मार डालेगी क्या?" कहता है.

पर वो इतने गुस्से में है कि कुछ जवाब नहीं देती है. - "चल बैठ सीधी तरह से... जैसा बाप वैसे बच्चे.... पूरा खानदान ही ऐसा है."

वह बैठ जाती है. डर के मारे रुलाई बन्द हो जाती है. जारी है तो केवल बीच-बीच में सिसकी, आँखों में आँसू और नाक से रेमट. सिसकी के साथ ही रेमट भी अन्दर खींचती है बार-बार.

"सीधी तरह कोई मानता ही नई है. कीड़े पड़ कर तमाम सर में फोड़े हो गये हैं. मर जायेगी रे...." गुस्से के साथ ही ममता

www.eTelangana.org

का उभाड़. बच्ची को मारने का पश्चाताप भी.

दूसरे बच्चे सब सहम से गये हैं. डिब्बे से पानी लेकर बालों पर छिड़कती है. जरीना को कुर्बानी के बकरे पर छिड़के जाने वाले पानी की तरह लगता है. बाल, धूल, मिट्टी और पसीने से मिलकर सूखी रोटी की तरह सख्त हो गये हैं. पानी डालकर आटा गूंदने की तरह गूँदती है बालों को. गंदले पानी की धार कनपटियों और गर्दन पर बहने लगती है.

अब वह कुर्बानी के लिए पूरी तरह तैयार है. वह अपना हथियार उठा लेती है. जरीना सहम सी जाती है. इस पनामा रेजरपत्ती से यह तीसरी चिकनी हंडी है. ब्लेड की पहली धार के 'चर' से लगते ही मुंह से 'सी' की सी आवाज निकलती है.

इसके आह-ऊह के अंग्रेजी पॉप..... उसकी बड़बड़ाहट के सुहावने बोल... रेजरपत्ती के चर्-चर् की धुन और बीच-बीच में बैंजो की तरह रेमट के सुड़कने के संगीतमय वातावरण में उसका मुंडन जारी है. और इन सबका साथ देने के लिए खर्र-खर्र का तानपुरा बजाते वह भी आ जाता है. उसका एक हाथ पीछे की तरफ है और दूसरा तानपूरा बजाने में व्यस्त.

शायद यह नाटक के शुरु होने के पहले का संगीत है. कारखाने का दोपहर दो बजे का सायरन बजता है. शेखपाशा को यह खेल शुरु करने की अंपायर की सीटी लगता है.

पीछे की तरह हाथ बंधा पा शक की नजर से देखती हुई पूछती है -"क्या है हाथ में?"

"कुछ नई?"

"कुछ नई तो फिर हाथ क्यों पीछे छुपा रखा है?" वह उठती है और लगभग बाज की तरह झपटती है.

शेखपाशा पुराना खिलाड़ी है. पर इस अचानक हमले को संभाल नहीं पाता है. पुराना काला पड़ा पीकदान उसके हाथ में आ जाता है.

"तेरे मूं में मट्टी पड़े.... हाय मेरे अल्ला.... अब इस पीकदान पर तेरी नजर पड़ी है."

"बेगम मैं अच्छी तरीके से कहता हूँ.... वो पहले इधर दे."

"मै नई देती....."

"मैं कहता हूँ दे दे."

"नई देती"

"मै आखरी बार कहता हूँ"

"नई देती-नई देती, नई देती जो करना है कर ले......"

"नई देती?.... देकता हूँ कैसे नई देती है......" वह आगे बढ़ता है. उस पर झपटता है. वह पीकदान दोनो जंघो के बीच में रख कर उकड़ूं बैठ जाती है. वह उसका हाथ बाहर खींचना चाहता है पर टस से मस नहीं होती है. पीठ सामने है. 'साली'...... 'हरामजादी'.... 'रांड'..... 'कुतिया' कहता पीठ पर घन मारने की तरह मुक्का मारने लगता है.

'भड़वा'.., 'हरामजादा'... 'तेरा मुरदा निकले'. वह मार खाते हुए ही गाली बकने लगती है पर पीकदान नहीं छोड़ती है.

अम्मी को मार खाता देख बच्चे रोने लगते हैं. उन दोनों की लड़ाई दो चतुर मुर्गो की लड़ाई-सी लगती है.

वह नीचे गिर जाती है. फिर भी जांघों के बीच पीकदान कसकर पकड़े रहती है. वह पीकदान पकड़कर खींचता है पर वह नहीं छोड़ती हैं. अपनी पूरी ताकत से घसीटता है फिर भी नहीं छोड़ती हैं. जानवर की तरह दूर तक घिसटती रहती है. आखिर में

www.eTelangana.org

जीत मरद की होती है. 'बदजात् औरत' कहता पीकदान लिये अपना जंघा खुजलाता वह आगे बढ़ जाता है.

उसकी साड़ी लगभग खुल सी गयी है. बेमेल रंग का पुराना पैबंद लगा लहंगा झांक रहा है. बाल छितरा गये हैं. पुराना ब्लाउज पीठ पर फट गया है. लोगों की भीड़ जमा हो गयी है. भीड़ में ज्यादा लोग कारखाने से दूसरी शिफ्ट करके लौटने वाले कामगार ही हैं. ढीले-ढाले धूल से भरे खाकी यूनिफार्म, पांवों में नाल लगे शेफ्टी जूते..... सर पर दाग लगे सफेद हेलमेट...... हाथों में स्टील, एल्युमीनियम अथवा पीतल के टिफिन केरेज.....

"ले जाकर अपनी अम्मा की..... में रख..... तेरा मुर्दा निकले..... तेरा जनाजा निकले....." वह भीड़ को सुनाती उसको गाली बकने लगती है. पर किसी तरह का असर उस पर नहीं होता है. उसकी बातों की तरफ ध्यान दिये बिना ही पीकदान, किसी जीते हुए कप की तरह घमंड से लिये चला जाता है.

"पाशा साला हमेशा ऐसा ही करता है..... अब जाकर दारु में डुबकी लगायेगा....."

"और नई तो क्या..... बीबी बच्चों की तो कोई फिकर ही नई है उसको. जब देखो तब गाँ... फुटे तक पीने को होना."

लोग आवेश में अपनी-अपनी प्रतिक्रिया जाहिर करते हैं..... बच्चे मां के पास आ जाते हैं. कोई उसकी साड़ी ठीक करता है, कोई उसके छितराये हुए बाल.....

"जाओ अम्मा तुम अंदर जाओ..... वो तो कभी सुधरेगा नई..... समझा समझा कर तो हम लोग ही थक गये हैं, दिमाग खराब हो गया है उसका. एक बूढ़ा कामगार कहता है.

धीरे-धीरे भीड़ छटने लगती है. लोग हंसते बतियाते चले जा रहे हैं. कोई उसको आवारा, लफंगा कहता है कोई इसको बदजात, मुंहफट, हल्कट.

"क्या रे पाशा! ऐसा ही क्या रे?"

"मैंने क्या किया रे?"

"सब कुछ करके मैने क्या किया बोलता है....."

शेख पाशा के साथ और दो वर्कर साथी बैठे हुए है. पाशा अपने खाकी यूनिफार्म में ही है. स्टैंडर्ड पोस्चर की तरह उसका स्टैंडर्ड ड्रेस भी है. कमर पर सुतली बंधी खाकी पैंट और खाकी शर्ट, ड्यूटी पर और बाहर भी. बिना यूनिफार्म के लगता है उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है. दूसरे दो, लगता है ड्यूटी के बाद नहा-धोकर फ्रेश होकर आये हैं. पर चेहरों पर अब भी थकान की छाया मौजूद है.

तीनों तिकोनाकार में नीचे उकडू बैठे हुए हैं..... बीच में ताड़ी की बोतलें. उनकी तरह कल्लु (शराब) कांपाउंड में और भी लोग जहां-तहां बैठे हुए पी रहे हैं.

'बुआ! तीन बोमड़ी तो लाना.'

थोड़ी दूर पर सड़क के किनारे एक अधेड़ उमर की औरत लकड़ी के खोखे पर एल्यूमिनियम की थाली में तला चना, तली सूखी बोमड़ी मच्छी, बेसन में तली मिर्ची लिये बैठी है..... नाक से टकराती ताड़ी की भीनी-भीनी महक के साथ ही इन तली चीजों की महक भी नथुनों से टकरा रही है. वह औरत पत्तल में तीन बोमड़ी लाकर देती है.

www.eTelangana.org

"क्या बुआ बहोत छोटी लाई....."

"तेरे लिए चुन-चुनकर बड़ी लायी हूँ..... इससे बड़ा होना क्या तेरे को". कहती खोखे की तरफ बढ़ते आवारा कुत्ते को भगाने के लिए तुरंत चली जाती है.

वह यहाँ पर आने वाले की सबकी बुआ है. सब उसे बुआ ही कहते है. पीने वालों के बीच स्वच्छंद होकर घूमती है. लोग मजाक में कुछ कहते हैं तो बुरा नहीं मानती है. बल्कि वह भी उन्हीं की तरह का गरम-गरम जवाब पेश करती है. उसको मालूम है कि उसके धंधे का राज यही है. वर्ना कितने ही आये और अपना खोंचा उठाकर चले भी गये.....

"हां तो बताया नहीं दोपहर में क्या हुआ था?" धोने के बाद खूब निचोडने से सलवटें पड़ी पैंट, बुशर्ट पहना आदमी कुंपटी पोशम फिर दोपहर वाली घटना पर उतर आता है.

"क्या हुआ था! साली पीकदान ले जाने ही नई दे रही थी. खामखां परेशान कर रही थी. और क्या करता दो चार रखकर जड़ दिया....."

पीकर कंपाउंड के कोने में नशे में धुत्त पड़ा आदमी जोर-जोर से गाली बकने लगता है.

"क्या किया पीकदान का?" इंदापुरी रामुल खड़ा होकर कारखाने में दिये गये कोरा क्लॉथ से सिली बंडी (बनियान) की जेब से बीड़ी का कट्टा निकालते हुए पूछता है...... जांघों तक धोती ऊपर करके फिर से बैठ जाता है.

"और क्या करता! गिरबी रख दिया..... भड़वा सेठ ने दस रुपये से एक पैसा भी जादा नई दिया. उल्टा दस रुपये के लिए भी आजीजी कराता रहा."

"देख यार पाशा, मैं एक बात कहता हूँ. हम भी पीते हैं

रोज पीते हैं..... पर लिमिट में..... घर का सामान ले जाकर गिरवी नई रखते हैं....."

"अरे वो साला पीकदान कई सालों से घर में रखा-रखा काला पड़ रहा था इसलिए....."

"इसलिए गिरवी रख दिया?..... आपा बता रही थीं कि वह.उसके अब्बा की आखिरी निशानी थी..... वो भी तू ले आया, बेचारी को कितना दुःख हुआ होगा."

"गिरबी ही तो रखा है..... छुड़ा लूंगा'

"हां तू कित्ता छुड़ायेगा मालूम है हमको". पास में बैठे आदमी को बीड़ी पीता देख उससे बीड़ी मांगकर अपनी बीड़ी सुलगाते हुए कहता है रामुलु.

"नमस्ते पाशा भाई"..... पैंट बुशर्ट पहने पच्चीस-छब्बीस साल का अनपढ़ सा लगने वाला आदमी सेल्यूट सा मारे खड़ा है.

"नमस्ते राजन्ना सॉब... कैसे हो?" शेख पाशा पूछता है.

"अच्छा हूं अन्ना" फिर दूसरे दोनों की तरफ देखकर-नमस्ते पोशन्ना!... "नमस्ते रामुलु अन्ना" कहता सेल्यूट मारता है.

"आ बैठ....."

"बैठता हूं बैठता हूं..... पहले एक बोतल मैं भी लेकर आता हूँ"..... कहता जाने लगता है.

"अरे वो छोकरे को पुकार न..... ए छोकरे इधर आ...." खुद ही आवाज देता है, इंदापुरी रामुलु.

लोगों के बीच नंगा बदन घूमता काला कलूटा, सूखटा छोकरा भागता हुआ आता है. राजन्ना जेब से पैसे निकालकर एक बोतल लाने को कहता है.

"एक और हमारे लिए भी ले आ....." इंदापुरी रामुलु भी

www.eTelangana.org

बंडी की जेब से पैसे निकालकर देता है.

छोकरा जाता है. पैंट को काटकर बनाई हुई खाकी नेक्कर भी चूतड़ पर पूरी तरह फटी हुई है..... दो बोतल ले आता है. सब बारी-बारी से एक दूसरे को ढालते हैं.

"आज डूटी नई आया पाशा भाई?" राजन्ना डकार लेता हुआ पूछता है.

"नई..... आया"

"साला आज मेरे को फ्लक्सो में उतरना पड़ा अन्ना..... सच बोलता हूं अन्ना दम निकल गया..... बराबर खड़े होने की जगह ही नई है अंदर..... बाप रे बाप इतना डस्ट. अबी तक सिर भन्ना रहा है....."



उसके पीछे की तरफ बैठा एक देहाती आदमी हाथ का बनाया चुरुट फूंक रहा है. धुंए के साथ ही तीखी गंध फैल रही है.

"हम लोग कैसे कर रहे हैं, पच्चीस-तीस साल से?" इंदापुरी रामुलु.

"सच कहते हो अन्ना. तुम लोग सचमुच कैसे कर रहे

हो..... अंदर इत्ता गरम कि मैं तो पूरा भीग गया..... बाहर आया तो रॉमिल डस्ट से भर कर भूत जैसा लग रहा था..... घर आकर नहाने तक चैन नई पड़ा..... दो बार साबुन लगाकर नहाया अन्ना फिर भी बदन अबी तक सूखा-सूखा है... नाक से छिनको तो डस्ट निकल रहा है... सिर भी अभी तक भन्ना रहा है... सोचा आज तो पिये बिना काम नहीं चलेगा... इसलिए मैं भी पीने चला आया. घर में पैसा नई था. मल्लेश के ठेले से दस रुपया उधार लेकर आ रहा हूँ."

"हम लोग भी पहले ऐसे ही आते थे. अब तो ऐसी लत पड़ गई है कि पीये बिना काम ही नई चलता है इसकी माँ का" पाशा कहता है.

पोशम टॉपिक बदलता हुआ पूछता है- "काटम नरसय्या की बेटी का कुछ पता चला..... ?"

"पता क्या चलने का है. रामदास के बेटे के साथ भाग गयी." राजन्ना जवाब देता है.

"सच है क्या?"

"और नई तो क्या! सबको मालूम है. बेचारा नरसय्या सीधा-सादा इज्जतदार आदमी है. चार लोगों में बेटी ने नाक ही कटवा दी."

"तो वो और क्या करती..... बड़ी होकर इत्ता साल हो गया है. रिश्ता ही नई आ रहा था..... रिश्ता भी आ रहा था तो चालीस-पचास हजार पूछ रहे थे..... कहाँ से लाता वो बूढ़ा बेचारा..... जब तक हाथ पैर काम करने लायक थे मैनेजमेंट ने काम लिया..... जब बीमार हो गया तो गांड पर लात मार कर निकाल दिया..... क्या करता, रिटायरमेंट का पैसा पूरा बीमारी में घुस गया..... बेटी

www.eTelangana.org

की शादी कहाँ से करता....." इंदापुरी रामुलु नरसय्या की तरफदारी में कहता है.

"शादी नई किया है तो भाग जाने का है क्या?"

"तो फिर क्या करने का है?..... गले में पत्थर बांधकर बाउड़ी में कूद जाने का है क्या?" रामुलु और राजन्ना में विवाद सा छिड़ जाता है.

"छोड़ो यार इन बातों को. इस छोकरी को लेकर तुम दोनों क्यों लड़ रहे हो आपस में. साला अपना मोहल्ला ही ऐसा है. रोज कुछ-न-कुछ लफड़ा होता ही रहता है". पोशम विवाद को आगे बढ़ाने से रोकने के लिए कहता है.

ताड़ी का एक दौर फिर से चलता है. पाशा जेब से बीड़ी का कट्टा निकालता है. सब सुलगाकर कश खींचने लगते हैं.

"अन्ना! मैं तो बताना ही भूल गया. तुमको मालूम है क्या मोहल्ले में पुलिस आयी थी..... ?"

नशे में लड़खड़ाता कोई नीचे पड़ी खाली बोतलों से टकराता है. इधर-उधर पड़ी बोतलों को बोरों में इक्ट्ठा करता ठिगना सा आदमी उसको देखकर बड़बड़ाता है.

राजन्ना के मुँह से पुलिस का नाम सुनते ही तीनों में उत्सुकता जागती है.

"कब?"

"अभी जब मैं आ रहा था."

"क्यों? कुछ लफड़ा हुआ क्या?"

"नई! स्क्राप चोरी..... पकड़ कर ले गए छोकरों को."

"किनको-किनको?..... मेरा बेटा तो नई था न?" पाशा के चेहरे पर अचानक कुछ दहशत-सी फैल जाती है.

"नई बड़के का नाम नई था."

"कोन-कोन था?"

"तोटाकूरा राजाराम का बेटा..... जानी का बेटा..... हसमत मियाँ का नाती, कैंटीन रामय्या के भाई का बेटा और तीन चार दूसरे मोहल्ले के छोकरे थे. परसों रात में फैक्टरी का कम्पाउंड कूदकर स्क्राप चोरी करके ले गये थे."

"तेरे को अच्छी तरह मालूम है मेरा बड़का नई था न?" शेख पाशा को अब भी विश्वास नहीं होता है.

"नई था अन्ना. तुम्हारा बड़का तो नई है करके पुलिस जाने तक मैं वहीं था."

पाशा चैन की सांस लेता है.

तीनों उठ खड़े होते हैं. पाशा को सहारा देकर रामुलु उठाता है. वह छोकरा वहीं पास बैठा ललचायी दृष्टि से उनकी तरफ ही देख रहा है.

"ये छोकरे ये ले ले"..... एक शीशी में आधी बची हुई ताड़ी की तरफ इशारा करता पोशम कहता है.

वह छोकरा मानो उस पर टूट पड़ता है.

वे टांगों को इधर-उधर झटका देते हैं. रास्ते पर एक आदमी पीकर औंधा लेटा हुआ है. उससे हटकर चलने लगते हैं सब लड़खड़ाते हुए. सड़क पर आते हैं. सड़क के किनारे चारों पेशाब करते हैं..... अंधेरे में जानवर के खुजलाने की तरह का खर्-खर् का गूंजता स्वर.

"देख चुपचाप घर जा..... और घर में जाकर चुपचाप सो जा. दोपहर की तरह गड़बड़ नई करना समझा."

"मैं कहाँ किया गड़बड़. वो ही हरामजादी..... छिनाल....."

www.eTelangana.org

"फिर वही बात. चुपचाप जा. मालूम पड़ा कि तूने रात में आपा के साथ फिर कुछ गडबड़ किया करके तो ....."

"नई करता रे! तू जा....."

"हाँ, नई करना..... बिल्कुल नई करना. जाकर चुपचाप सो जा..... हम चलते हैं." तीनों अपनी-अपनी राह पकड़ लेते हैं. पाशा अकेला अपनी राह नशे में धुत बड़बड़ाता, लड़खड़ाता, खर्र्-खर्र्, खुजलाता. ऊबड़-खाबड़ अंधेरा रास्ता. स्ट्रीट लाइट के खंबे तो हैं, पर गोले फ्यूज्ड़. कहीं-कहीं पर ही जलते बल्ब. उसे देखकर कुत्ते भूंकते हुए आते हैं.

"भूंको भूंको..... खूब भूंको..... फैक्टरी में साब भूंकता है..... घर में बीवी भूंकती है..... और गली में तुम भूंको..... जोर जोर से भूंको..... ये साला शेखपाशा सब बरदाश्त कर लेगा..... भूंको रे भूंको....." लड़खड़ाता हुआ आगे बढ़ता है. कुत्ते पास आकर पहचान जाते हैं और भौंकना बंद कर देते हैं.

घुप्प अंधेरा..... ऊबड़-खाबड़ रास्ता..... हलक तक भरा छलकता हुआ नशा..... ताड़ी के बोतलों के टकराने की सी अचानक जोरदार खनक..... पाशा वहीं ढेर हो जाता है.

"अरी ओ बड़के की अम्मा..... क्या कर रही है रे..... बाहर तो निकल जल्दी....."

"क्या है फुफ्फी.... ?" अंदर से ही कहती बाहर आती है.

"अरे तेरे खाविंद को सायकिल टक्कर हो गया है न रे..... पड़ा हुआ है गल्ली में....."

"अरे मेरे अल्ला! .....कहाँ पर..... ?" लगभग रोती सी

भागती है फुफ्फी के साथ. साथ ही बड़का, छोटका, जरीना और पूरी पलटन भागती है पीछे-पीछे. बड़का सबसे आगे पहुँच जाता है.

शेख पाशा बेहोश पड़ा है गली में. 'हाय मेरे अल्ला! ये क्या हो गया रे'..... कहती वह उसके पास जाती है. बच्चे भी 'अब्बा-अब्बा' कहते रोने लगते हैं. सब मिलकर घर लाते हैं और खटिये पर लिटाते हैं. पाशा कराहता रहता है.

कंदील लाकर मुआयना करती है. पांव में घाव सा हो गया है. खून बह रहा है. भगोने में पानी लाकर पुरानी साड़ी से चिंदी फाड़ उसमें डुबोकर पोंछती है. फिर वहां पर हल्दी लगाती है.

"बड़के के अब्बा जादा तो नई लगा न..... ?"

"कमर में लगा है. बोत दरद कर रहा है". नशे में ही कराहता है.

वह उसको पेट के बल लिटाती है. कराहता है..... वह कमर पर हाथ रख कर धीरे धीरे दबाती है, अम्मा..... वहीं पर..... मर गया रे..... मर गया रे..... बस-बस..... और मत दबा री..... हां वहीं पर..... वहीं..... अम्मा रे...... मर गया रे.....

तेल लगाकर धीरे-धीरे मालिश करती है. फिर तवे में नमक गरम करके पोटली में बांध धीरे-धीरे सेंकती है- "बड़के के अब्बा कित्ती बार कहा..... इत्ता क्यों पीते हो करके..... पर मेरी सुनो तब न..... ?"

ताड़ी की सर चकराने वाली गंध पूरी झोपड़ी में व्याप्त है. बच्चे खटिया के पास खड़े अब्बा की हालत देखकर बेचैन से हैं.

एक दो-एक दो के तादाद में निकलने वाले कामगार साढ़े सात का सायरन बजते ही टाइम आफिस में पंच करके खाकी

www.eTelangana.org

यूनिफार्म में इस तरह प्लांट की तरह बढ़ते हैं जैसे यात्री गाड़ी के स्टेशन पर रुकने के बाद पर प्लेटफार्म पर गेट से निकलती भीड़. आगे चलकर कामगार अपने-अपने डिपार्टमेंटों में जाने के लिए अलग-अलग रास्तों में बंट जाते हैं.

'सात चालीस हो गया है अभी तक पूरे वर्करों का पता नहीं है.' मिल्स डिपार्टमेंट के सामने चबूतरे पर खड़ा प्लांट इंजीनियर बार-बार घड़ी की तरफ देखते हुए कामगारों के आने का इंतजार करता खड़ा है.

"इस टकलू साले को तो हमेशा जल्दी ही रहती है. साढ़े सात का सायरन बजा नई कि चिल्लाने लगता है." उसके सामने र्क अलाटमेंट के लिए खड़े वर्करों में से एक धीरे से फुसफुसाता है.

हां, लोग इसे टकलू ही कहते हैं. सर पूरी तरह गंजा है. गंजा चिकना सर ग्रीस लगे बाल बेयरिंग की तरह लग रहा है.

"इनको तो देर से आने की तो आदत ही पड़ गयी है." उसकी बगल में खड़ा फोरमैन कहता है. बहुत ही गिड्डा है. कनपटिया इस तरह दबी हुई है मानो प्रेसिंग मशीन में रखकर दबा दिया गया हो..... रंग, सफेद गुड़ के ढेले की तरह.

"साला गिड्डा ताल दे रहा है". पहले वाला कामगार फिर से फुसफुसाता है.

कारखाने में जितने भी अफसर है, उनमें प्राय: सभी का उनके रंग-रूप अथवा चाल-ढाल के अनुसार उनमें जो भी विशेषता दिखलाई देती है उसके मुताबिक सब का अलग-अलग नाम दे दिया गया है.

एक-दूसरे की बगल में खड़े होने से इंजीनियर और भी लंबा और फोरमैन और भी गिड्डा लग रहा है.

सबकी तरह आकर शेखपाशा भी लोगों के बीच खड़ा हो जाता है. अपने सादे ड्रेसों में दोनों साहबों का खाकी वर्दी पहने कामगारों से अलग पहचाने जाने की तरह अपने स्टैंडर्ड पोस्चर के कारण वह भी सबसे अलग पहचाना जा रहा है.

टक्-टक्-टक्-टक् कंप्रेसरों के चलने और घन्-घन्-घन्-घन् कर मिलों के घूमने का कान के पर्दे फोड़ देनेवाली आवाज लगातार पार्श्व से आ रही है. पर इन ध्वनियों का किसी तरह का प्रभाव न तो कामगारों पर ही पड़ रहा है और न ही टकलू और गिड्डे सॉब पर ही.

"हां तो राजरेड्डी चार नंबर मिल बंद पड़ा है. रात में ही घुमाकर एमटी कर दिया गया है. मेंटेनेंस लेना है. अपने गैंग के साथ वहाँ जा....." टकलू साब आदेश देता है.

'अच्छा साब' कहता राजरेड्डी किसी मशीन की भांति जाने लगता है. उसके साथ उसके गैंग के दूसरे आदमी भी जाने लगते हैं.

"एयरस्लाइड का काम कहां तक हुआ है?" टकलू सॉब, गिड्डे फोरमैन से पूछता है.

"कैनवास डालने का है" गिड्डा फोरमैन जवाब देता है.

"अभी भी कैनवास डालना बाकी है. तीन दिन से काम चल रहा है. किसका गैंग काम कर रहा है वहां?"

"मेरा गैंग साब" - लच्चेटी राजम आगे आते हुए कहता है. हवा निकलने पर सिकुड़े डॅस्ट फिल्टर बैग की तरह सिकुड़ा हुआ है उसका सीना.

"काम अभी तक पूरा क्यों नहीं हुआ?"

"घुटने तक तो डस्ट भरा है वहां, कोई साफ नई कर रहा

www.eTelangana.org

है. फिर काम कैसे जल्दी होगा ? होना तो इन सॉब से पूछो. ये भी कल वहीं पर थे". गिड्डे फोरमैन की तरफ इशारा करता कहता है.

"ए मैं कुछ सुनना नहीं मांगता. आज शाम तक काम पूरा होना मांगता है. समझे ?"

रॉमिल की चिमनी अचानक पूरी शक्ति से डॅस्ट उगलने लगती है.

"जित्ता होगा उत्ता करेंगे. कोई कंट्राक्ट ले रखे हैं क्या ?" वह धीमी आवाज में बड़बड़ाता हुआ चला जाता है.

"सॉब वो नंबर थ्री एलिवेटर रात में डिरेल हो गया था....." गिड्डा फोरमेन.

"हां-हां ठीक याद किया..... किसको भेजेंगे ?" सामने, लोगों की तरफ देखता है.

"यादगिरी को भेज देंगे सॉब."

"ठीक है. यादगिरी जाकर एलिवेटर अटैंड कर. हां कंट्रोल रूम से पहले लाइन क्लीनर ले लेना....."

"साब मेरा हेल्पर नई आया लगता है"..... यादगिरी कहता है.

"कौन ?"

"सारम मल्लय्या !"

"वो तो हमेशा एबसेंट करता है. होपलेस बेगर. वालेंटरी रिटायरमेंट में भेज देंगे तो मालूम पड़ेगा. फिलहाल तुम किसको लोगे ?" एक क्षण सोचता है.

"स्पेयर में आज कौन है ?" फोरमेन से पूछता है.

"शेखपाशा !"

"हां तुम उसको ले लो."

"पाशा को ? नई साब किसी और को दे दो....." यादगिरी कहता है.

"क्यों ?"

"आपको तो मालूम है साब, उसको काम बताने से खुद कर लेना अच्छा है."

"क्यों नहीं करता है ? क्यों पाशा तू काम नहीं करता है क्या ?"

"करता हूँ सॉब". पाशा चेहरे पर बिना किसी प्रतिक्रिया के आराम से अपना जांघ खुजलाता जवाब देता है.

"करता है तो फिर ये लोग क्यों बोलते हैं ?"

"ये लोग तो ऐसे ही बोलते हैं सॉब. इनको तो आदत हो गया है".

"हां देखो ! बराबर काम करना. इसके पहले भी तुम्हारा कंप्लेन आया है. और कोई कंप्लेन नई आने का. समझे ?"

"जी".

"यादगिरी ! काम नई किया तो मेरे को बताने का है. इसको भी वालेंटरी रिटायरमेंट में भेज देंगे....."

"साब ये कल भी ड्यूटी पर नहीं आया था"..... गिड्डू को शिकायत करने का मौका मिल जाता है.

"क्या... क्यों नहीं आया था ?"

"बीवी सीरियस थी".

"सब बकवास ! कभी इसकी बीवी सीरियस रहती है, कभी नानी मर जाती है, कभी दादा का टांग टूट जाता है, कभी..... महीने में पंद्रह दिन तो ऑबसेंट करता है....."

"पाशा तुम्हारा रिकॉर्ड बहुत खराब है. इस तरह का रिमार्क

www.eTelangana.org

रहा तो....."

एक कामगार अंदर से भागता हुआ आता है. -"साब-साब दो नंबर रॉमिल के गियर बॉक्स में धुआं निकल रहा है".

"अरे तो मिल बंद करो जल्दी". गिड्डू अंदर की तरफ भागता है. बगल में दबाया हुआ हेलमेट सिर पर लगाता हुआ अपनी लंबी टांगों से लंबा-लंबा डग भरता हुआ भागता है टकलू सॉब भी.

कामगारों के खाने के लिए बने डायनिंग हाल में तीन-चार कामगारों के साथ पाशा बैठा गप्प हांक रहा है. शेख पाशा के बगल में बैठा ठिगना कद का कामगार जेब से बीड़ी का कट्टा निकालकर एक बीड़ी सुलगाता है. इसका नाम भीमय्या है.

"अबे साले! बीड़ी दे रे. दूले भाई बोले तो कोई कदर ही नई है". पीठ पर धौल जमाते हुए बीड़ी कट्टा उसके हाथ से लेता हुआ शेख पाशा कहता है.

"एक तो भीख, ऊपर से रुआब लाट सॉब के", सामने बेन्च पर बैठा सारली टोंट कसता है.

"अबे दूले भाई वाले तो क्या समझ रखा है रे. पैर दबाओ बोले तो पैर दबाना..... उठो बोले ता उठना, बैठो बोले तो बैठना..... फुकट में ही इसकी बैन को थोड़ी कर लिया हूं. क्यों बे साले"! एक धौल और भीमय्या पर जमाता है. लोग हंसते है.

इस फैक्टरी में उसके कई नाते रिश्तेदार भरे पड़े है. कोई बुजुर्ग है तो दादा..... कोई मामा, कोई चिच्चा, हम उमर हो तो साला या बहनोई, बहुत छोटा हुआ तो तम्मी.

जिससे भी उसका रिश्ता साले-बहनोई का है वह उससे

गाली देते हुए ही बात करता है.

"पाशा तू यहां बैठा है..... हम तेरे को कहां-कहां ढूंढ रहे हैं". यादगिरी डायनिंग हाल में घुसते ही उसको गप्प मारता बैठा देख चिड़चिड़ा पड़ता है. किसी भैंस के कीचड़ में लोट आने की तरह सारे बदन पर रॉमिल पाउडर (चूना पत्थर का पाउडर) लगा हुआ है.

"चाय का टेम हो गया है न मिस्त्री". बिना किसी प्रतिक्रिया के कहता है.

"चाय का टेम तो अबी हुआ है. साला हम लोग वहां मर रहे हैं" एलिवेटर जाम निकाल-निकालकर और तू यहां बैठा है आराम से गप्प हांकते. हाथ में रखा बड़ा स्क्रू पाना डायनिंग टेबुल पर पटकता हुआ कहता है.

"काम कर करके तो बूढ़ा हो गया हूँ. और कित्ता करो बोलते हो मेस्त्री". बीड़ी का एक लंबा कश खींच जांघ खुजलाता हुआ कहता है.

यादगिरी बेंच पर बैठ जाता है. सिर पर का हेलमेट निकालकर टेबुल पर रख देता है. अब तक हेलमेट मे ढका हुआ सर का वह हिस्सा पसीने से भीगा हुआ है और वही हिस्सा मात्र डस्ट से बचा हुआ है. पसीने से भीगे सर के बाल भीगे हुए मुर्गी के पंखो की तरह लग रहे हैं.

"बूढ़ा हो गया तो पगार नहीं ले रहा है क्या? सात तारीख के दिन तो सबसे आगे खड़ा रहता है लाइन में. जब इतना तनखा ले रहा है तो थोड़ा तो ईमानदारी से काम कर"

"क्या लगा रखे हो मेस्त्री....." जांघ को जोर से खुजलाता है. इसी के साथ ही गेयर बाक्स के ढक्कन की तरह दोनों ओंठ पूरी

www.eTelangana.org

तरह खुल जाते हैं. ग्रीस की तरह कत्थई कोटिंग लगे टेढ़े-मेढ़े गेयरनुमा दांत दिखलाई देने लगते हैं. जित्ता काम किया वो ही बोत हो गया. आज ये सिमेंट फैक्टरी देख रहे हो न..... हमारे खून-पसीने से खड़ी है. एरेक्सन में गॉडर उठा-उठाकर हमारे हाथों में फफोले आ जाते थे फफोले. देख अभी तक गांठे बनी हुई हैं."

काली-काली गांठों से भरी अपनी बेढंगी हथेलियां उसके सामने फैला देता है.

लंबी-लंबी, टेढी-मेढ़ी उंगलियाँ, हथेलियों में जहां-तहां फटन..... फटनों में भरा काला मैल -"और ये उंगली देख रहे हो पैसे की तरह चपटा, गॉडर के नीचे दब गया था"......

"हम लोग एक-एक गॉडर अकेले कंधे पर उठाकर सामने वो गैंट्री देख रहे हो वहां सीढ़ी चढ़कर सौ-सौ फीट ऊपर तक ले जाते थे..... कंधा देखो कैसी गांठे उभर आयी हैं".

एरेक्सन का डिसकसन आने पर भीमय्या की भी अपनी यादें ताजा हो जाती हैं और कमीज का बटन खोलकर कंधा दिखलाता है. गाड़ी में जुतने वाले बैल के गर्दन की तरह कंधे का वह हिस्सा एकदम काला पड़ा हुआ है.

"आज वोई गॉडर चार-चार लोग मिलकर उठाते हैं..... ऊपर से चैन ब्लॉक बांधो..... जुगाड बनाओ..... 'अबेस'..... 'हरिया'.... 'है सो है सो' चिल्लाओ... काम कम चिल्लाना जादा..."

"एक-एक गैस सिलेंडर एक-एक आदमी कंधे पर उठाकर सौ-सौ फुट ऊंचे सिमेंट सैलो पर चढ़ते थे". शेख पाशा के सामने बैठा पोशम अपने अतीत में खोया सा बताता है- "उस समय थे भी हट्टे-कट्टे..... इधर पलटकर उधर देखने तक यहां का पहाड़ वहां उठाकर रख देते थे. नोचो तो खून, फुव्वारे जैसे बदन से छिटकता

था..... पत्थर को लात मारे तो टुकड़े-टुकड़े हो जाता था..... आज के जैसे मरियल थोड़ी थे".

"एक तो इत्ता तकलीफ उठाते थे..... ऊपर से मुकद्दम की मां बहन की गाली अलग....."

"एरेक्सन के टेम पर एक मेकानिकल इंजीनर था..... नाम उसका याद नई आ रहा है..... हां ठीक याद आया हरीपरसाद" पोशम.

"हां-हां हरीपरसाद, बहोत हरामी था साला..... हम लोगों को पानी तक पीने नई जाने देता था"..... पोशम के बोलने के पहले ही भीमय्या बोलता है.

"हां साला नंबर वन हरामी था. अपना शंकर अन्ना है न शंकर अन्ना फिटर पिछले साल रिटायर हुआ है उसको रेलिंग फिट करने का काम दिया था..... एक रेलिंग थोड़ा क्रास था. हरीपरसाद के पूछने पर बेचारा डरते-डरते उंगली से बताते हुए बोला था- 'साब इत्ता सा बाहर आ गया है.....' हरीपरसाद उसकी नकल करते हुए उंगली से उतना ही इशारा करते हुए बोला था- 'इत्ता सा बाहर आ गया है..... इत्ता-सा गू खायेगा.....' ऐसा था भोसड़ीवाला" पोशम के मन में अभी भी उसके प्रति आक्रोश है.

"ऐसे-ऐसे तकलीफ उठाये हैं हमने..... खाना तकलीफ उठाकर हम लोगों ने बनाया..... परोसने के टेम पर आकर बड़ा ईमानदारी का लेक्चर झाड़ रहे हो." कहने के साथ ही शेख पाशा का डाँवा हाथ और भी तेजी से ऊपर-नीचे होने लगता है.

चाय की घंटी बजती है. -'चाय आ गया'- 'चाय आ गया'- कहते सब अपना-अपना मग लिये बाहर जाने लगते हैं. शेख पाशा भी यादगिरी के पास जाकर 'मेस्त्री कोपन दो' कहकर

www.eTelangana.org

पूछता है. चिड़चिड़ाहट में होने के बावजूद वह दो कूपन फाड़कर उसके हाथ में रख देता है.

एल्यूमिनियम के मग में चाय लिये लौटते हैं. शेख पाशा एक मग लाकर यादगिरी को देता है और दूसरा स्वयं बैठकर पीने लगता है. सब गपशप करते पीते हैं. भीमय्या की जेब में हाथ डालकर शेख पाशा बीड़ी का कट्टा निकालता है. एक बीड़ी निकालकर -'लो मेस्त्री पियो'- कहता यादगिरी की तरफ बढ़ाता है, दूसरा स्वयं अपने ओठों में दबा लेता है.

"ससुरे की कमाई, जमाई का दान" भीमय्या का बीड़ी मिस्त्री को देता देख सारली कहता है- सब हँसते हैं.

बीड़ी फूंककर बचे-खुचे टुकड़े को बुझाने के लिए दीवार पर मसलता कहता है यादगिरी -"पाशा! चलो यार बहुत हो गया. एलिवेटर जाम निकालना है. काम नई होगा तो बेकार में टकलू चिल्लायेगा."

"वो टकलू! आने दो न मेरे पास, मेस्त्री तुम क्यों फिकर करते हो. मैं बात कर लूंगा उससे. इसके जैसे कित्ते आये और कित्ते चले गये. उन लोगों ने मेरा क्या उखाड़ा और ये क्या उखाड़ लेगा. क्या बोलते हो सारली" -शेखपाशा सारली के पुट्ठों पर हाथ मारते हुए कहता है.

"हां ठीक ही तो है. हम लोग मजदूर में भरती हुए. अट्ठाइस साल हो गया अब भी मजदूर हैं. इत्ते दिन तक इत्ता काम किया तो कुछ नई मिला. और अब करेंगे तो क्या इंजीनर बना देगा"..... सारली उसका पक्ष लेते हुए कहता है.

"वो जब पहले-पहले आया था तो अटेंडेंस डालता था एरेक्सन के टेम पर, टकलू कहीं का! साब लोगों को पानी लाकर

पिलाता था. मस्का मार-मारकर पहले चार्जहेंड बना, फिर असिटेंट मेकानिकल इंजीनर, फिर मेकानिकल इंजीनर और अब दुलाशा साब का पांव पकड़कर पिलांट इंजीनर बना बैठा है. और ये साला शेख पाशा मजदूर में भरती हुआ, मजदूर में ही है और मजदूर में ही रिटायर होगा..... काम हम लोगों ने किया. नाम इसने कमाया. परमोशन उसको मिला. वो मेरे से क्या कहेगा. जबान तो खोलने दो टकलू को मेरे सामने". शेखपाशा का हाथ इंजन के पिस्टन की तरह तेजी से आगे पीछे होने लगता है.

यादगिरी लाचारी से बस उसकी तरफ देखता ही रह जाता है.

रात के अंधेरे में जब ओवर फ्लो होने तक चढ़ाये हुए टाट का पर्दा हटाकर शेखपाशा झोपड़ी में प्रवेश करता है तो छोटके और बड़के को लड़ते हुए पाता है. उसको देखकर छोटका रोते हुए उसके पास आता है और शिकायत करते हुए कहता हैं- 'अब्बा.....अब्बा..... भाईजान ने मेर कू खूब मारा.....'

"अरे बड़के क्यूं मारा रे तूने?"

"मेरा गेंद ले लिया. पूछने पर नई दे रहा है."

"वो गेंद मेरा है. मेर को मिला है....."

"नई मेर को मिला है".

'तू-तू मैं-मैं' करते दोनों फिर से उलझने लगते है. "अरे लौंडी के तुम चुपचाप होते हो की नई. इस घर में तो बिल्कुल चैन नई है. जब देखो कुच-न-कुच बोमड़ी मचता ही रहता है. हर समय कुछ न कुछ लड़ाई-झगड़ा चलता ही रहता है."

"हां-हां मैं खूब मस्ती चढ़कर लड़ती हूँ न". बड़के की

www.eTelangana.org

अम्मा की आवाज कहीं से बीच में टपक पड़ती है.

वह एक झोलदार खटिया पर लेटी कराह सी रही है. पुरानी गुदड़ी को ऊपर तक ओढ़ रखी है. माथे पर कसकर एक चिंदी बंधी हुई है.

"बड़के की अम्मा, मैं तेरे को थोड़ी बोल रहा हूँ. तू तो बस खाम-ही-खाम बीच में टपक पड़ती है. क्या हो गया तेर को?"

"मेर को क्या होगा भला..... मैं तो मोटी-ताजी हूं. रोज दंड पेल रही हूँ". कराहती हुई कहती है.

"साला इस घर में तो बात करना ही मुश्किल है. कोई सीधी मूं बात ही नई करता है". घड़े के पास जाकर तामचीनी के मग से पानी निकालकर गट-गट पीता है. खड़ी हुई खटिया नीचे पटककर लेट जाता है.

"घर में बीवी हैं..... बच्चे हैं..... कबी फिकर किया है? वो लोग कैसे जी रहे हैं. कभी सोचा है.....? बस गांड फूटे तक पीकर आ जाते हो. इतने दिनों से बीमार हूँ. कबी पूछा है? कबी अस्पताल में ले जाकर बताया है?...... क्यों बताएगा?..... तू तो चाहता है कि मैं मर जाऊँ..... इस जंजाल से छुटकारा पाऊँ. जब मर जाऊंगी तब तेरा कलेजा ठंडा होगा. तेरे लिए तो मैं जंजाल बनकर बैठी हुई हूँ न....." उसकी सांस चढ़ने लगती है.

"काहे को जान खाती हो बड़के की अम्मा. खाली-पीली ही क्यों बकबक कर रही हो. आज रात भर सबर कर ले. मर नई जायेगी. कल अस्पताल ले जाकर बताऊंगा."

"कौन-सा अस्पताल जरा मैं भी तो सुनूं?"

"और कौन सा अस्पताल. कंपनी का अस्पताल."

"तेरे कंपनी के अस्पताल में माटी पड़ो. उस अस्पताल का तो चक्कर लगा- लगाकर मेरी चप्पल घिस गई है". कंपनी अस्पताल का नाम सुनकर वह बिदक-सी जाती है.

"अम्मी तू चप्पल कहां पहनती है?" बीच में ही बड़का आश्चर्य से पूछता है.

"अरे चुप बैठ न रे, तेरे मूं में माटी पड़ो. बीच में ही टपक पड़ता है. अब वो चप्पल पहनना एक ही बाकी रहा इस हवेली में. यहां बीमारी से मर रही हूं, अस्पताल ले जाकर सुई दिलाने की ताकत नई है, चप्पल दिलायेगा, चप्पल....." वह फिर से व्यंग कसती बड़के को झिड़कती है.

"कह दिया न आज भर सबर कर ले. कल अस्पताल ले जाऊंगा."

"वो ही कंपनी का अस्पताल न?"

वह कुछ जवाब नहीं देता है.

"क्या देगा वो डाक्टर भड़वा..... बस पानी का दवा फेंक देता है मूं पर."

"और बाहर का डाक्टर क्या देता है? कुछ भी कहो, लौंडीके सुई घुसेड़ देते हैं. सालों को पैसे से मतलब."

बीबी क्या कहती है यह सुनने का सबर अब उसमें नहीं है. गुदड़ी ओढ़कर कानों में उंगली घुसेड़कर खाट पर मुर्दे की तरह पड़ा रहता है. बीबी कराहती हुई बड़बड़ाती ही रहती है.

बीबी का बड़बड़ाना पहले बंद हुआ या उसका नींद में खर्राटे भरना पहले आरंभ होता है- पता नहीं!

जनरल मैनेजर के कमरे में फैन चील की तरह पूरी रफ्तार

www.eTelangana.org

से घूम रहा है.

फोम की बड़ी-सी कुर्सी में धंसा गिड्डा सा जीव है जनरल मैनेजर. टकले सर पर जहाँ-तहाँ थोड़े-थोड़े बाल. गोरे चिकने चेहरे से ही मैच करता उसी रंग का चश्मा.

फैन के पूरी रफ्तार से घूमने के बावजूद चेहरे से पसीना छूट रहा है. कारण एयरकंडीशन बंद है. चेहरे पर आयी चिकनाई के साथ बेचैनी साफ झलक रही है. अभी गर्मी का सीजन आरंभ नहीं हुआ है पर उसके लिए गर्मी बरदाश्त से बाहर है. बार-बार कॉरीडार में जाता है. परेशानी में इधर-उधर टहलता है. जब चैन नहीं पड़ता तो फिर से अपने खोल में आकर समा जाता है. करीब पौन घंटा पहले एसी. रिपेर के लिए ले जाया गया है. इस बीच वह दो बार फोन कर चुका है. अब यह तीसरी बार है.

"ए.सी का काम कहां तक हुआ?"

"साब रिपेर हो रहा है."

"कुछ फाल्ट मिला?"

"अभी तक नहीं मिला, कोशिश में लगे हैं."

"जल्दी करो. मेरा तो जान निकला जा रहा है. हॉरिबुल गर्मी..... ओह अनबीयरेबुल..... हाँ एक काम करो. किल्न पैनल में जो ए.सी. है न उसको लाकर पहले यहाँ फिक्स कर दो. बाद में इसको रिपेर करते रहना". फोन पर बात करते हुए ही रुमाल से कनपटी पर बहता पसीना पोंछता है. गोरे चेहरे पर बहता पसीना चिकनाई को और भी बढ़ा रहा है.

फोन रखकर दरवाजा पुश करके फिर से कॉरीडोर में आ जाता है. उसका ऑफिस थर्ड फ्लोर में है. बाहर देखता है. वर्कशॉप के बाहर तीन-चार मजदूर धूप में ही कंप्रेशर रिपेर कर रहे हैं.

ओपन यार्ड से बुलडोजर चलने की आवाज आ रही है. डोजर ऑपरेटर लैटरेट(आइरन ओर) का ढ़ेर, गैंट्री की तरफ डोज कर रहा है. सिर पर केवल हेलमेट. डोजर पर ऑपरेटर के बैठने वाली जगह पर शेड के लिए बनाया गया शीट गायब है. ऑपरेटर धूप में नहा रहा है. डोज करने से लैटरेट का लाल घना उठता हुआ धुंआ. जी.एम. कुछ देर उधर निहारता है. इतनी दूर से ही धूल देखकर इर्रीटेट होता है. धूप से आंखे चौंधिया-सी जाती है. रूमाल से हवा करते हुए कुछ देर कॉरिडोर में इधर-उधर घूमता है. फिर आकर अपनी फोम वाली कुर्सी पर बैठ जाता है. कुबड़ाहट के कारण कुर्सी में पूरी तरह धँस सा जाता है. टेबुल पर रखे पेपर पर साइन करने के लिए मुंडी बाहर निकाल हाथ आगे बढ़ाता है तो ऐसा लगता है मानो कोई घोंघा खोल में से मुंडी और टांगे बाहर निकाल रहा है.

टन्.....टन्..... टन्.....टन्..... -

"हेलो!"

"कौन?"

"हां-हां बोलो डार्लिंग क्या बात है? सब ठीक तो है न?" आवाज पहचानकर वह चौंक सा पड़ता हुआ कहता है. चेहरे पर पसीने की बूंदे फूट पड़ती हैं.

"खाक ठीक है....." दूसरी तरफ से आवाज आती है. उसे झटका सा लगता है. कुर्सी से उठ खड़ा होता है.

"क्यों क्या हुआ डार्लिंग?"

"और क्या होगा? तुम्हारे उस धोबी के बच्चे ने मेरा वो फॉरेन वाला ब्रा गुमा दिया....."

"अरे रे..... रे ये तो गजब हो गया. मैं उस गधे के तनखा से पैसे काट लूंगा."

www.eTelangana.org

"तुम तो पैसे काट लोगे. पर अब मेरा क्या होगा". मुझे लेडिस क्लब के फंक्शन में जाना है. फॉरेन का एक ही ब्रा तो बचा था मेरे पास....."

"अजीब परेशानी है. उस धोबी के बच्चे को भेजो मेरे पास". क्या करें कुछ न समझ वह कहता है.

"तुम इससे ज्यादा भला और कर भी क्या सकते हो." वह फोन पटक देती है.

यह सीधा उसके व्यक्तित्व पर ही प्रहार था. हताश-सा वह भी फोन नीचे रख देता है. कुछ क्षणों तक अपने सभी अवयवों को खोल में सिकोड़ लेता है. उसमें उठने की ताकत नहीं है. फिर भी जब बैठे नहीं रहा जाता तो उठकर दरवाजा पुश करके फिर से बाहर आ जाता है. रुमाल से पसीना पोंछते हुए कॉरीडोर में इधर उधर घूमता है. वर्कशाप के बाहर रखा हुआ कंप्रेसर चालू हो चुका है. धक्-धक्-धक्-धक् की लगातार आवाज आ रही है. वह फिर से आकर अपने खोल में समा जाता है. ट्रे से पेपर लेकर साइन करने जाता है पर दो-तीन पेपर से अधिक साइन नहीं कर पाता है. फोन उठाता है. -"इंस्ट्रूमेंट इंजीनीयर है वहाँ? फोन पर बुलाओ..... हाउ फार द वर्क हैज कम..... वॉट?..... यू कुड नाट रिपेर इट टिल नाऊ? वाट द हेल यू आर डूइंग देयर? आई वांट ए.सी विद इन फिफ्टीन मिनेट्स...... यू डू आर डाई..... देट इज योर बिजनेस..... आई वोंट हीयर एनी एक्सक्यूज..... अंडरस्टैंड?" .....फोन पटक देता है.

टन्.....टन्.....टन्.....टन्.....

"हू स्पीकिंग?" उसी आवेश से पूछता है.

"और कौन? मैं" ..... दूसरी तरफ से आवाज आती है.

उसका आवेश पूरी तरह से ठंडा पड़ जाता है. फिर से पसीने की बूंदे माथे पर फूट पड़ती हैं. -"ब्रॉ मिल गया?"

"खाक मिल गया. न जाने कहाँ-कहाँ से सर्वेंट्स ढूंढकर रख लिया है. सब एक से बढ़कर एक....."

"फिर क्या हो गया?" आवाज एकदम धीमी पड़ जाती है.

"और क्या होगा. धोबी ने ब्रॉ गुमा दिया, और अब तुम्हारे ड्रॉयवर सॉब ने जो ब्लॉउज सिलाकर लाया वो आ ही नहीं रहा है. एकदम छोटा हो गया."

"क्या कहा ब्लॉउज छोटा हो गया? कहां है वह ब्लॅडीफूल..... न जाने किस टेलर को स्टिचिंग के लिए दिया था."

"मैंने पहले ही कहा था कि बांबे भेजकर सिलवाउंगी. पर मेरी बात मानों तब न. तुम तो हमेशा अपनी ही चलाते हो. मेरी भतीजी ने भेजी थी कितने प्यार से न्यूयार्क से. इतने कॉस्टली पीस का सत्यानाश हो गया....."

"फ्यूचर में बांबे में ही सिलायेंगे डार्लिंग. वो ब्लॅडी बॉस्टर्ट तो बोल रहा था कि उसने शहर के सबसे अच्छे टेलर को दिया है।"

"और तुमने उसकी बातों का भरोसा कर लिया. फंक्सन में मैचिंग ब्लाउज पहनकर जाने का प्लॉन ही चौपट हो गया. बाई द वे, क्लब में फंक्सन के बाद हम लोगों ने मैटिनी शो जाने का प्रोग्राम बनाया है. उसके लिए कन्वेंस चाहिए."

"अपना कार है न?"

"कार में तो मैं जाऊंगी. दूसरे लेडीस क्लब मेंबरों को भी तो जाना है."

www.eTelangana.org

"हां-हां उनके लिए वैन भिजवा दूंगा...... ठीक है?"

दूसरी तरफ से कुछ जवाब नहीं मिलता है. फोन डिसकनेक्ट हो जाता है. वह फोन रख देता है. बाहर निकल आयी अपनी मुंडी और टांगनुमा हाथों को फिर से खोल में समेट लेता है.

किर्र् की आवाज से दरवाजा खुलता है. शेखपाशा वहीं से झुककर आदाब करता है. उसके हाथ में एक कागज है. टेबुल पर उसकी तरफ बढ़ाता है.

"क्या है?" खा जाने वाली नजरों से अपनी तरफ बढ़ाये गये कागज की तरफ बिना देखे ही पूछता है.

"सॉब मेरी बीबी बोत बीमार है...... सीरियस है..... खाट से उठ तक नई रही है". उसका डाँवा हाथ बिना किसी रुकावट के मशीन के पिस्टन की तरह अपना काम किये जा रहा है.

"तो एडवांस चाहिए? कितनी बार एडवांस ले चुके हो अब तक?"

"एडवांस नई साब."

"तो लोन चाहिए?"

"नई साब"..... खुजलाना अभी भी जारी है. एक टांग-खूंटे की तरह सीधी तनी हुई और दूसरी ढीली. इस पोस्चर में देख वह अपनी तौहीन समझता है. उसके पूरे जवाब देने के पहले ही गुस्से में कहता है- "ढंग से खड़े हो."

शेखपाशा तनकर सीधा खड़ा हो जाता है.

"तो फिर क्या चाहिए?"

"वैन! बीवी को अस्पताल लाना है."

"तो मेरे पास क्यों आया?..... परसनल मैनेजर के पास

जा". उसका पेपर टेबुल पर उसकी तरफ ही फेंकते हुए कहता है.

"साब परसनल मेनेजर के पास गया था..... डी.जी.एम. साब के पास बी गया था. सुबे से सब जगह घूम-घूमकर ही आपके पास आया हूँ. बीवी बोत बीमार है साब"..... कहते-कहते उसका डाँवा हाथ किसी लचीले बेंत की तरह फिर से जांघ पर पहुँच जाता है और एक टाँग ढीली हो फिर से अपने स्टैंडर्ड पोस्चर में आ जाता है.

"पहले ढंग से खड़े हो." फिर से गुस्से में वार्निंग देता है.

वह फिर से अटेंशन की मुद्रा में खड़ा हो जाता है.

"जाओ वैन-ऐन कुछ नहीं मिलेगा."

"वो बिल्कुल चलने की हालत में नई है साब."

"तो मैं क्या करूं? तुम पहले ऑफिस से बाहर जाओ."

"बोत सीरियस है साब."

"तो मैं क्या करूं? तू बाहर जाता है कि नहीं?" गुस्से से कांपने लगता है.

"अगर टेम पर इलाज नई हुआ तो मर जायगी साब."

"मर जाने दो"..... जोर से चिल्लाता है गुस्से में.

"छोटे-छोटे बच्चे हैं. तरसेंगे मां के लिए......"

"तरसने दो, क्या होगा?"

"कुछ नई होगा साब". बहुत ही शांत स्वर में फिर से अपने स्टैंडर्ड पोस्चर में आते हुए कहता है- "बस यही होगा कि आपकी मेम को बच्चों की अम्मा बनाकर ले जाऊंगा."

उसे लगा अचानक किसी ने कई घड़े कूलर का ठंडा

www.eTelangana.org

पानी उस पर उड़ेल दिया हो. कुछ देर के लिए उसे कुछ भी नहीं सूझता है. फिर गुस्से से कांपता हुआ बौखलाया सा खोल से बाहर कूदता है और उसकी तरफ ऐसे लपकता है मानो खा जायेगा – "बाहर निकल बास्टर्ड..... मैं तेरे को नौकरी से निकाल दूंगा. डिसमिस कर दूंगा. तू किससे बात कर रहा है पता है ?..... निकल बाहर."

ऐसा लगता है मानो अब मारा तब मारा.

शेख पाशा अपने डांवें हाथ से जांघ खुजलाते हुए बिना किसी प्रतिक्रिया के किर्र् की आवाज से दरवाजा खोल बाहर चला जाता है. दरवाजा फिर से अपने आप बंद हो जाता है.

वह फिर अपने कमरे में अकेला रह जाता है. टेबुल पर से पानी का गिलास उठाकर गट्गट् पी जाता है.

फोन उठाता है. डॉयल करता है...... "हैलो..... वाच एंड वार्ड ? कौन ? सिक्यूरिटी ऑफिसर..... हाँ तुम तुरंत वैन लेकर मेरे ऑफिस में आओ..... वेरी अर्जेंट....."

और फोन रखने के साथ ही प्यून के लिए लंबा बेल दबाता है.

निढाल सा होकर खोल में पड़ जाता है. चेहरा छत की तरफ है. फैन फुल स्पीड में घूम रहा है. उसे लगता है मानों कोई चील सर पर मंडरा रहा हो. वह अपने अवयवों को सिकोड़-सा लेता है.

❀ ❀ ❀

हंस सितंबर १९९२

www.eTelangana.org